वर्ष 2, अंक 6, अप्रैल-2016
चैत्र, वि. सं. 2073, ₹50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

06-15
पर्यावरण प्रेमी हिंदू चिंतन एवं व्यवहार
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

16-21
मातृ ऋण चुकाए बिना मुक्ति नहीं
दामोदर शाण्डिल्य

22-27
क्या पशुओं को मनुष्य की क्रूरता से मुक्त जीवन का अधिकार है?
अखिलेश तिवाड़ी

28-39
हिमालय के सीमावर्ती देशों में चीन की घुसपैठ और भारत की सुरक्षा
डॉ. सतीश कुमार

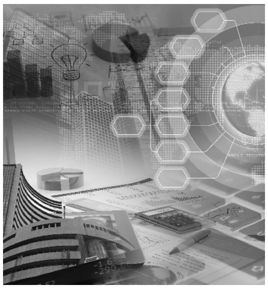

40-43
बजट 2016
नए भारत की आशा का अग्रदूत
तिलक चांदना

44-47
बवासीर कारण और निवारण
डॉ. ज्योत्स्ना

48-61
हिंदी माध्यम से चिकित्सा विज्ञान के शिक्षण हेतु प्रयास
प्रो. मोहनलाल छीपा

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्पलेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-930883-4-0

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
इ-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥
मुण्डकोपनिषद् 3/1/6

सत्य ही जय को प्राप्त होता है, मिथ्या नहीं। सत्य से देवयान मार्ग का विस्तार होता है, जिसके द्वारा आप्तकाम ऋषि लोग उस पद को प्राप्त होते हैं जहाँ वह सत्य का परम निधान (भंडार) वर्तमान है। सत्य अर्थात् सत्यवान ही जय को प्राप्त होता है, मिथ्या यानी मिथ्यावादी नहीं।

अथ

■ जिज्ञासा मानव की सहज स्फूर्त, एक महत्त्वपूर्ण वृत्ति है जो जीवन को स्पंदित किए रहती है।

■ यह वृत्ति मानव को प्रकृति, परमेश्वर, पुरातत्त्व व पदार्थ के विषय में जानने को उत्प्रेरित करती है। आज तक मानव ने उक्त विषयों के संदर्भ में जो ज्ञान अर्जित किया है वह इस महती वृत्ति, मानव की मननशीलता तथा अध्यवसाय का परिणाम है।

■ मानव संवेदनशील प्राणी है। प्रकृति की व्यापकता, विशिष्टता व वैविध्यपूर्णता को निहार वह विस्मयविमुग्ध हो जाता है- हिमाच्छादित पर्वत शिखर, अनछुए ग्लेशियर, कल-कल निनादित नदियाँ, झर-झर झरते झरने, नित नए रूप में सौंदर्य को परिभाषित करते विविधवर्णी सुमन, पंख फैला नभ को बहलाते पखेरू, कर्म को उत्प्रेरित करती सूर्य की भास्वरता व ऊष्मा और बाद में उसकी थकान हरती चारु चंद्र से सुसज्जित, सौम्य निशा की गोद में सुलाती नटखट निंदिया।

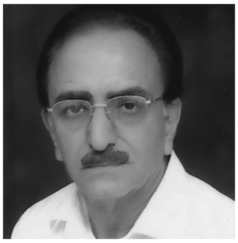

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

■ यह रम्य कल्पना किस कलाकार की है? प्रकृति का ऐश्वर्य देख मानव चकित भी होता है और उस कलाकार को जानने को अधीर भी।

■ ये जिज्ञासाएँ मानव को बेचैन किए रहती हैं। उसकी मननशीलता को सक्रिय, अध्यवसाय व उद्यम को गतिशील बनाती हैं।

■ इसी प्रक्रिया में सिद्धार्थ बुद्ध बन जाते हैं। कबीर 'पुहुप बास ते पातरा' को अनुभूत कर लेते हैं।

■ जिज्ञासा शमित करते हुए हिलेरी, तेनजिंग एवरेस्ट विजय कर लेते हैं, तो नील आर्म स्टॉंग चाँद पर पहला कदम रखते हैं। यह जिज्ञासा ही कोलंबस को अमेरिका के दर्शन कराती है और वास्को डी गामा को भारत भू के।

■ दयानंद गुरु विरजानंद का दर खटखटाते हैं और नरेंद्र रामकृष्ण परमहंस की शरण में जाते हैं।

■ सेब को गिरता देख न्यूटन की जिज्ञासा उद्बुद्ध होती है, तो गुरुत्वाकर्षण का गुरु सिद्धांत उद्घाटित होता है।

■ मानव की जिज्ञासा ही उसे विद्याओं के पीछे दौड़ाती है। जिस जिज्ञासु में यह वृत्ति जितनी गहरी होती है, उतना ही वह विद्यार्थी विद्या को जीवन में उतार पाता है; अन्यथा डिग्रीधारकों की कोई कमी नहीं।

■ मानव जीवन का शायद ही कोई आयाम ऐसा हो जहाँ जिज्ञासा अपना खेल नहीं खेलती हो। ऋषियों, मनीषियों, वैज्ञानिकों, शिक्षकों, पुरातत्त्वविदों, चिकित्सकों, अभियंताओं, इतिहासकारों से लेकर आम आदमी तक सभी का जीवन जिज्ञासाओं से अनुस्यूत है। प्रश्नाकुलताओं से सजीव व सक्रिय है, कभी-कभी उलझाऊ व बोझिल भी।

■ एक शिक्षार्थी की जिज्ञासा परीक्षा के परिणाम के प्रति हो सकती है, कृषक की खेती की चिंता में वर्षागमन के प्रति, आप्रेशन थियेटर के बाहर बैठे प्रियजन अपने आत्मीय के प्रति जिज्ञासा व चिंता का मूर्तिमंत रूप दिखाई देते हैं, तो फिर क्रिकेटप्रेमी 98 पर खेल रहे विराट के शतक के लिए साँसे रोके खड़े होते हैं।

■ परिसर स्कूल का हो या विश्वविद्यालय का, काऊंटर दुकान का हो या माल का, सभागार आश्रम का हो या संसद का; जिज्ञासा-नटिनी सब को नाच नचाती है।

■ अतः जिज्ञासा है तो जीवन जीवंत है, स्पंदित है, स्पृहणीय है। जिज्ञासा न हो तो जड़ है। उद्यम व सौभाग्य से जिज्ञासा शमित हो जाए तो प्राकाम्य शांति है-आनंद हैं।

बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण के कारण वैश्विक स्तर पर हो रहे जलवायु परिवर्तन से दुनिया के सभी देश चिंतित हैं। इस संकट का समाधान ढूँढने के दिशा में संयुक्तराष्ट्र की पहल पर पेरिस में नवंबर 2015 में आयोजित शिखर सम्मेलन में कार्बन उत्सर्जन को सीमित करने पर सहमति व्यक्त की गई। जलवायु में हो रहा चिंताजनक बदलाव मुख्यरूप से विकसित देशों की उपभोक्तावादी नीतियों का दुष्परिणाम है। उपभोक्तावादी नीतियाँ मानव की असीमित लालसा की पूर्ति के लिए मनुष्य को प्रकृति के अंधाधुंध शोषण के लिए उकसाती हैं। हम यदि वास्तव में इस संकट का स्थायी और धारणक्षम समाधान चाहते हैं तो हमें संयमित उपभोग की नीति अपनाते हुए प्रकृति के प्रति मैत्री भाव अपनाने पर जोर देना होगा।

पर्यावरण प्रेमी हिंदू चिंतन एवं व्यवहार

डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

आज संपूर्ण संसार में नष्ट होते पर्यावरण और बढ़ते प्रदूषण को लेकर सर्वाधिक चिंता है और इसीलिए विभिन्न स्तरों पर इसके निदान और समाधान को लेकर विचार भी होने लगा है। यदि इस विचार-यात्रा में विश्व के विचारक-मनीषी हिंदू दृष्टि, हिंदू दर्शन, हिंदू जीवन शैली और हिंदू व्यवहार शैली को भी अपने विवेचन-विश्लेषण में सम्मिलित कर लें तो यह अत्यंत उपयोगी होगा। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और हिंदू चिंतन दोनों के संयुक्त प्रयास से ही वर्तमान विश्व के सामने उपस्थित पर्यावरण-ह्रास के संकट को समग्रता से समझने और समाधान के योग्य उपाय खोजने में मदद मिल सकती है। भारतीय मनीषियों ने पर्यावरण के दो रूप माने हैं- बाह्य पर्यावरण और आंतरिक पर्यावरण। बाह्य पर्यावरण से तात्पर्य भूमि, जल, वायु, जीव-जंतु और वनस्पतियों से संबंधित पर्यावरण से है, जबकि आंतरिक पर्यावरण का संबंध आत्मा के पर्यावरण से है। ये दोनों प्रकार के पर्यावरण ही परमात्मा के बनाए हुए हैं और इसलिए दोनों में एकलयता पाई जाती है। हिंदू मनीषियों ने इस एकलयता को ठीक प्रकार से समझने और इसे बनाए रखने पर जोर दिया है।

पर्यावरण के नष्ट होने अथवा पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न होने को ही आज की भाषा में प्रदूषण (Pollution) कहते हैं। प्रदूषण के लिए हिंदू मनीषियों ने विकृति और विषम स्थिति इन दो शब्दों का प्रयोग किया है। प्रदूषण के भी दो रूप हैं-बाहरी प्रदूषण और आंतरिक प्रदूषण। मिट्टी, जल, वायु, पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं में जीवन को नुकसान

भारतीय मनीषियों ने पर्यावरण के दो रूप माने हैं- बाह्य पर्यावरण और आंतरिक पर्यावरण। बाह्य पर्यावरण से तात्पर्य भूमि, जल, वायु, जीव-जंतु और वनस्पतियों से संबंधित पर्यावरण से है, जबकि आंतरिक पर्यावरण का संबंध आत्मा के पर्यावरण से है। ये दोनों प्रकार के पर्यावरण ही परमात्मा के बनाए हुए हैं और इसलिए दोनों में एकलयता पाई जाती है। हिंदू मनीषियों ने इस एकलयता को ठीक प्रकार से समझने और इसे बनाए रखने पर जोर दिया है।

पहुँचाने वाले भौतिक, रासायनिक और जैविकीय तत्त्वों की आवश्यकता से अधिक उपस्थिति होने पर बाह्य प्रदूषण की स्थिति पैदा होती है। दूसरी ओर हमारे मनीषियों ने आंतरिक प्रदूषण को 'मानसिक और बौद्धिक कुत्साओं' के रूप में परिभाषित किया है। उनका मानना था कि आंतरिक प्रदूषण के कारण ही बाहरी प्रदूषण पैदा होता है। पहले मनुष्य के भीतर प्रदूषण की इच्छा जगती है, लोभ व लालसा उत्पन्न होती है और तब उसका प्रकटीकरण बाहरी प्रदूषण एवं असंतुलन के रूप में होता है।

महर्षि चरक ने इसकी कारण-मीमांसा करते हुए बताया है कि यह असंतुलन या विषम स्थिति काल, अर्थ और कर्म में विकृति आ जाने के कारण उत्पन्न होती है। 'काल' से तात्पर्य है-सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि ऋतुएँ। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध-ज्ञानेंद्रियों के इन विषयों को उन्होंने 'अर्थ' से संबोधित किया है। 'कर्म' तीन प्रकार के बताए गये हैं-कायिक, मानसिक और वाचिक (अर्थात् काया, मनसा, वाचा)। उन्होंने कहा कि काल, अर्थ और कर्म इन तीनों में अतियोग (अर्थात् आवश्यकता से अधिक), अयोग (अर्थात् अभाव) या मिथ्यायोग (अर्थात् दुरुपयोग) होने पर ही विकृति या विषम स्थिति (अर्थात् प्रदूषण) उत्पन्न होती है। महर्षि चरक ने यह भी कहा है कि धी, धृति और स्मृति में विकार उत्पन्न हो जाने अथवा इनके भ्रष्ट या असंतुलित हो जाने पर आंतरिक प्रदूषण उत्पन्न होता है। इसीलिए उन्होंने कहा कि प्रदूषण की समस्या के केवल बाहरी कारणों पर विचार कर लेना और उनका समाधान कर लेना पर्याप्त नहीं है। आंतरिक और बाहरी कारणों के समानांतर समाधान का जब हम प्रयास करेंगे तभी प्रदूषण की समस्या के बारे में एक संतुलित-समग्र दृष्टिकोण अपनाया जा सकेगा।

प्रदूषण के विभिन्न रूप व उनके कारण

आधुनिक विद्वान पर्यावरण प्रदूषण के जिन विभिन्न रूपों की चर्चा करते हैं, उनमें मुख्य हैं; भूमंडलीय ताप (अर्थात् धरती की तपन) में वृद्धि, ओजोन परत का पतला होते जाना, अम्ल वर्षा, वनों की जबरदस्त अंधाधुंध कटाई और सागरीय प्रदूषण। कुल मिलाकर सरल भाषा में कहना हो तो आज हम मिट्टी प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त हैं। प्रदूषण की यह समस्या पिछली शताब्दी में और उसमें भी पिछले पचास वर्षों में अधिक गंभीर बनी है। इसके मुख्य कारण इस प्रकार हैः-

इस समस्या का मूलभूत कारण है-खंडित यांत्रिक विश्वदृष्टि। इस दृष्टि के अनुसार यह मान लिया गया है कि यह संपूर्ण सृष्टि एवं प्रकृति एक मशीन के समान है, जो विभिन्न कल-पुर्जो से मिलकर बनी है। मशीन के किसी भी कल-पुर्जे को मशीन से अलग कर देने, उसे ठोकने-पीटने पर उस पर कोई असर नहीं होता, उसे कोई दर्द नहीं होता। जैसे हम मशीन से किसी भी कल पुर्जे को अलग कर उसके स्थान पर स्क्रू से दूसरा पुर्जा लगा

सकते हैं, उसी प्रकार हम प्रकृति के भी विभिन्न भागों के साथ बर्ताव कर सकते हैं। इस मान्यता के कारण ही प्रकृति के प्रति संवेदनहीनता उत्पन्न हो गई है।

अंग्रेज वैज्ञानिक फ्रांसिस बेकन का मत था कि प्रकृति जड़ है और अपने आनंद के लिए इसका अधिकाधिक उपयोग करना मनुष्य का अधिकार है। इस दृष्टिकोण ने प्रकृति को चुड़ैल व दासी माना है। इसी विचार के कारण ही प्रकृति के शोषण के विभिन्न तौर-तरीकों का जन्म हुआ जो अंततोगत्वा पर्यावरणीय हानि के कारण बने।

हमने अधिकाधिक उत्पादन और अधिकाधिक उपभोग पर आधारित विकास की गलत अवधारणा को स्वीकार कर लिया। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य के मन में अधिकाधिक लालसाएँ जगने लगीं और

महर्षि चरक ने यह भी कहा है कि धी, धृति और स्मृति में विकार उत्पन्न हो जाने अथवा इनके भ्रष्ट या असंतुलित हो जाने पर आंतरिक प्रदूषण उत्पन्न होता है। इसीलिए उन्होंने कहा कि प्रदूषण की समस्या के केवल बाहरी कारणों पर विचार कर लेना और उनका समाधान कर लेना पर्याप्त नहीं है। आंतरिक और बाहरी कारणों के समानांतर समाधान का जब हम प्रयास करेंगे तभी प्रदूषण की समस्या के बारे में एक संतुलित-समग्र दृष्टिकोण अपनाया जा सकेगा।

इसने भी पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुँचाया।

अगला कारण है गलत उत्पादन-तंत्र एवं गलत उत्पादन-तकनीक को अपनाना। आज का उत्पादन-तंत्र, तकनीक व तकनोलॉजी प्राकृतिक साधनों के अत्यधिक शोषण, ऊर्जा के अधिकाधिक उपयोग एवं भारी-भारी मशीनों से संचालित उद्योग-धंधों पर आधारित है। उदाहरण के लिए कृषि के क्षेत्र में अपनाई गई तथाकथित नई तकनोलॉजी ने भूक्षरण, उर्वराशक्ति के ह्रास, भूजल स्तर में कमी एवं कृषि उत्पादों में हानिप्रद रासायनिक तत्त्वों की वृद्धि जैसी समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं।

अंतिम और सबसे बड़ा कारण है दोषपूर्ण जीवनशैली एवं उपभोगशैली। एअरकंडीशनिंग, फ्रिज, फोम के गद्दों, रंग-रोगन और रसायनों के बढ़ते प्रयोग

हिंदू दर्शन सर्वंकश एकात्म विश्व दृष्टि में विश्वास रखता है। इसके अनुसार संपूर्ण सृष्टि में एक सर्वांग संपूर्ण संतुलन पाया जाता है। सृष्टि, पर्यावरण और प्रकृति के बीच एक अन्योन्याश्रित अविभाज्य संबंध है। यह ब्रह्मांड एक जीवंत, चेतन और अविभाज्य इकाई है। अतः टुकड़ों में बाँटकर एक जड़ इकाई की तरह इसके साथ व्यवहार नहीं किया जा सकता। जो दर्शन संपूर्ण सृष्टि के तमाम अवयवों में एक ही परम सत्ता का दर्शन करता हो वह अनावश्यक जीव-जंतुओं को मारने और पेड़-पौधों को नष्ट करने के बारे में सोच ही नहीं सकता।

के कारण सीएफसी (Chlorofluorocarbons) की समस्या बढ़ गई है। सौंदर्य प्रसाधनों के कारण जीवजंतुओं की अनेक प्रजातियाँ नष्ट हो रही हैं। परिवहन, फैशन, पब्लिसिटी और पैकेजिंग प्रदूषण के सबसे बड़े कारण बन गए हैं।

पर्यावरण हिंदू दर्शन, दृष्टि और व्यवहार

हिंदू दर्शन सर्वंकश एकात्म विश्व दृष्टि में विश्वास रखता है। इसके अनुसार संपूर्ण सृष्टि में एक सर्वांग संपूर्ण संतुलन पाया जाता है। सृष्टि, पर्यावरण और प्रकृति के बीच एक अन्योन्याश्रित अविभाज्य संबंध है। यह ब्रह्मांड एक जीवंत, चेतन और अविभाज्य इकाई है। अतः टुकड़ों में बाँटकर एक जड़ इकाई की तरह इसके साथ व्यवहार नहीं किया जा सकता। जो दर्शन संपूर्ण सृष्टि के तमाम अवयवों में एक ही परम सत्ता का दर्शन करता हो वह अनावश्यक जीव-जंतुओं को मारने और पेड़-पौधों को नष्ट करने के बारे में सोच ही नहीं सकता।

हिंदू मनीषियों ने सृष्टि चक्र, यज्ञचक्र आदि नामों से एक प्रकृति चक्र का सिद्धांत दिया है। उन्होंने प्रकृति को दिव्य और चेतन माना है। प्रकृति के विभिन्न अवयव जैसे भूमि, जल, वायु, जीव-जंतु और वनस्पति मिल कर एक जैविक परिवार बनाते हैं, जो जीवन धारण प्रणाली (Life Support System) का आधार है। इनके बीच अन्योन्याश्रित संबंध पाए जाते हैं। भूमि, जल और वायु के बिना जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों का टिकना संभव नहीं; उसी प्रकार जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों के कारण ही भूमि, जल और वायु का अस्तित्व है। इस प्रकार प्रकृति में अंतर्संबंधों का एक नेटवर्क है, इसे ही आज की भाषा में 'समेकित जीवन धारण प्रणाली' (Unified life support system) कहा जाता है।

इस प्रकृतिचक्र को बनाए रखने का नाम ही पर्यावरण संरक्षण या पर्यावरण संतुलन है। इस प्रकृतिचक्र को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्रकृति से केवल लेने का काम ही न करें, बल्कि इसे देते भी रहें। प्रकृति के देवता तभी प्रसन्न रहते हैं जब व्यक्ति लेता भी है और देता भी है। सूर्य देवता वाष्प के रूप में जल लेते हैं, तो वरुण देवता उसे वर्षा के रूप में वापस कर देते हैं। कुल मिलाकर, यह लेने-देने का क्रम चलते रहना चाहिए।

मनुष्य ने अपने लालच के कारण इस प्रकृतिचक्र को नुकसान पहुँचाया है, जिसके फलस्वरूप पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न हो गया है। यदि हम विभिन्न प्रजातियों एवं जैव विविधता के बारे में विचार करेंगे तो पाएँगे कि वे भी एक-दूसरे पर निर्भर हैं। प्रत्येक प्रजाति उन जैव-रसायनों (bio-chemicals) का उत्पादन करती है जो किसी दूसरी प्रजाति के काम आते हैं। अतः किसी एक प्रजाति के नष्ट होने का मतलब है संतुलन चक्र का बिगड़ जाना। अतः हमें जैव विविधता की रक्षा करनी चाहिए। इस विश्व के अंदर प्रत्येक जीव-जंतु का अपना प्रयोजन है, उस प्रयोजन को पहचान कर योग्य तालमेल

बनाए रखना आवश्यक है। इसी का नाम धर्म या पर्यावरण संतुलन है। संभवतः इसी कारण धर्म की परिभाषा करते हुए यह कहा गया है-'धारणात् धर्ममित्याहु'।

हिंदू चिंतन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रकृति के प्रति इसका दृष्टिकोण है। हिंदू ने प्रकृति को माँ या देव के रूप में देखा और माना है। प्रकृति के प्रति हिंदुत्त्व की दृष्टि सहअस्तित्त्व, सामंजस्य और सौहार्द के साथ मातृत्त्व एवं दैवीय भावयुक्त सम्मान दृष्टि है। यदि हम इस दृष्टि की पुनर्स्थापना कर पाते हैं तो सारी प्रणालियाँ, आचरण और व्यवस्थाएँ बदल जाएँगी। पश्चिम के भौतिकतावादी विचारक इस दृष्टिकोण को समझ पाने में असफल रहे हैं और इसलिए उन्होंने इसका मजाक ही बनाया है। जब हिंदू धरती माता, गौमाता, तुलसी माता, गंगा माता, नाग देवता, चंद्र देवता, सूर्य देवता आदि कह कर इनकी पूजा-अर्चना करता है, तो पश्चिम के लोग इन्हें आदिमकालीन समाज के असभ्य लोग कहकर इनकी उपेक्षा करते रहे हैं। किंतु अब पश्चिम के लोगों को भी प्रकृति का महत्त्व समझ में आने लगा है।

हमारी दृष्टि में प्रकृति से संघर्ष एवं प्रतिद्वंद्विता नहीं और इस पर विजय पाने का अहंकार भी नहीं- माता से भला कैसी होड़। अतः हम प्रकृति के शोषण में नहीं दोहन में विश्वास करते हैं। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को परमेश्वर की शक्ति माना गया है। जब विकास में प्रकृति और संस्कृति दोनों का उपयोग किया जाता है तभी वह धारणक्षम और संस्कारक्षम बन पाता है। अब हम जरा इस बात पर विचार करें कि हिंदू शास्त्रों में किसकी पूजा है? वेदों में किसके गीत हैं? किसके मंत्र हैं? सूर्य, वरुण, अग्नि, इंद्र आदि को देव माना गया है और हमारा वैदिक साहित्य इनकी स्तुति के मंत्रों से भरा पड़ा है। ऋग्वेद में मुख्य रूप से अग्नि की और यजुर्वेद में वायु की प्रार्थना है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में 63 मंत्र हैं, जिनमें धरती माता की प्रार्थना है। यह सूक्त धरती और पर्यावरण के संबंध में हिंदू दृष्टिकोण को प्रकट करता है। यह पर्यावरणीय मूल्यों का सर्वोत्कृष्ट मार्गदर्शक है। ऋषि ने इस सूक्त में पृथ्वी के आधिभौतिक और आधिदैविक दोनों रूपों का स्तवन किया है और पृथ्वी

को गंधवती, रसवती, अवनि, विष्णुरूपा, परिपोषक, पालक, वसुंधरा, कामदुग्धा, पयस्वति, सुरभि, धेनु, विश्वंभरा, हिरण्यवक्षा आदि नामों से संबोधित किया है। धरा और धर्म दोनों का धृ धातु से संबंध है। दोनों से पोषण प्राप्त होता है और इनका ह्रास (या कमी) प्रदूषण व समस्याएँ पैदा करता है।

सामवेद में मुख्यतः जल की अर्चना की गई है, जो जीवन धारण के लिए अनिवार्य तत्त्व है। जल पीने, सिंचाई, सफाई, जीवजंतुओं के आश्रय, भोजन व दवाओं के निर्माण आदि के कार्यों में आता है। छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार जल पृथ्वी का सार है और पौधे (वनस्पति) जल का सार हैं। इसीलिए भारतीय परंपरा में नदियों व समुद्रों को देव रूप में माना गया है और नदियों को माता मानकर उनका संबंध उर्वरा शक्ति से जोड़ा गया है। विश्व की प्रमुख सभ्यताएँ नदियों के किनारे ही पली-बढ़ी हैं। भारतीय सभ्यता में जल-स्रोतों के पूजन की प्राचीन परंपरा रही है। महाभारत एवं अन्य सभी हिंदू धर्मग्रंथों में जल संरक्षण, जल प्रबंधन एवं जलदान को पुण्य, यज्ञ, धर्म-अर्थ-काम का फल देने वाला, अत्यंत महत्त्व का करणीय कार्य माना गया है। अतः तालाब, नदी, कुएँ आदि को स्वच्छ रखने का परामर्श दिया गया है। पद्मपुराण में कहा गया है कि नदी के तटों को मूत्र, पुरीष, बिष्ठा, श्लेष्मा, निष्ठीव (थूक), आँख के कीच, मल आदि से दूषित करने वाला पापी होता है। भारत नदियों का देश रहा है। नदी के तीर पर ही संस्कृति-सभ्यता का विकास हुआ है। कुंभ-महाकुंभ का आयोजन नदियों के किनारे ही होता है। हरिद्वार, ऋषिकेश, प्रयाग, काशी, नासिक, मथुरा-वृंदावन आदि पवित्र नगर नदियों के किनारे ही बसे हैं।

> **मनुष्य ने अपने लालच के कारण इस प्रकृतिचक्र को नुकसान पहुँचाया है, जिसके फलस्वरूप पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न हो गया है। यदि हम विभिन्न प्रजातियों एवं जैव विविधता के बारे में विचार करेंगे तो पायेंगे कि वे भी एक-दूसरे पर निर्भर हैं। प्रत्येक प्रजाति उन जैव-रसायनों (bio-chemicals) का उत्पादन करती है जो किसी दूसरी प्रजाति के काम आते हैं। अतः किसी एक प्रजाति के नष्ट होने का मतलब है संतुलन चक्र का बिगड़ जाना। अतः हमें जैव विविधता की रक्षा करनी चाहिए।**

भारतीय संस्कृति में सरोवरों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्षा के जल को सरोवरों में एकत्रित कर वर्ष भर इसके उपयोग करने की दृष्टि से सरोवर महत्त्वपूर्ण माध्यम रहे हैं। जल के महत्त्व को स्वीकार कर भारत में जल संचयन की सुदीर्घ परंपरागत प्रणालियाँ रही हैं। उन्हें पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। भारत में कुछ जातियाँ सरोवर, कुएँ, बावड़ी आदि बनाने में सिद्धहस्त रही हैं जैसे कोली, अगरिया, परिहार, भील, मीणा, नायक, गरसिया, बंजारा, ओढ़िया आदि।

हमारे यहाँ विभिन्न देवी-देवताओं के वाहनों की कल्पना के पीछे भी पर्यावरणीय दृष्टि रही है। भगवान शंकर का वाहन नंदी, कुमारस्वामी का मोर, ब्रह्मा का हंस, विष्णु का गरुड़, गणेश का चूहा, लक्ष्मी का उल्लू, सरस्वती का हंस और दुर्गा का सिंह है। इन पशु-पक्षियों की देवों के वाहनों के रूप में कल्पना के पीछे इनके संरक्षण एवं संवर्धन पर जोर देना ही रहा है।

विभिन्न व्रत-त्योहारों के पीछे भी पर्यावरण-संरक्षण की ही अवधारणा काम कर रही है। वट सावित्री के दिन महिलाएं वट वृक्ष की पूजा करती हैं। पीपल के वृक्ष की पूजा का भी अपने आप में बड़ा महत्त्व है। आँवला नवमी, तुलसी-पूजन, तुलसी का विवाह, कथा व पूजन में कदली (केले) का उपयोग, वंदनवारी में आम,

भारतीय संस्कृति में सरोवरों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्षा के जल को सरोवरों में एकत्रित कर वर्ष भर इसके उपयोग करने की दृष्टि से सरोवर महत्त्वपूर्ण माध्यम रहे हैं। जल के महत्त्व को स्वीकार कर भारत में जल संचयन की सुदीर्घ परंपरागत प्रणालियाँ रही हैं। उन्हें पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। भारत में कुछ जातियाँ सरोवर, कुएँ, बावड़ी आदि बनाने में सिद्धहस्त रही हैं जैसे कोली, अगरिया, परिहार, भील, मीणा, नायक, गरसिया, बंजारा, ओढ़िया आदि।

अशोक आदि के पत्तों का उपयोग, विजयादशमी पर शमी पत्र के प्रयोग आदि का विधान रहा है। विभिन्न देवी-देवताओं के पूजन-अर्चन में विभिन्न प्रकार के पत्र, पुष्प व फल का प्रयोग किया जाता है। होली, दिवाली, गोपाष्टमी, बसंतपंचमी, मकरसंक्रांति आदि अनेक त्योहार ऋतु-परिवर्तन से संबंधित हैं। हमारे यहाँ के दशावतार जीव विकास की कहानी कहते हैं। कुल मिलाकर, प्रकृति के संबंध में हिंदुओं की इस संपूर्ण मातृत्त्व दृष्टि को वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए। यदि इसे ठीक से समझ लिया तो फिर अपने मनोरंजन व सुख-सुविधा के लिए प्रकृति पर विजय अथवा प्रकृति के शोषण की कहानी नहीं चलेगी। इस दृष्टि से रामचरितमानस का वह प्रसंग महत्त्वपूर्ण है जब लक्ष्मण के मूर्छित होने पर हनुमान जी संजीवनी बूटी ले आए तो वैद्य सुषेण ने उसे तुरंत तोड़कर लक्ष्मण को नहीं पिला दिया। बल्कि उस संजीवनी बूटी के सामने खड़े होकर प्रार्थना की कि हे देवी संजीवनी! मेरे एक रोगी के लिए, मुझे बूटी तोड़ने की अनुमति दीजिए। यह है हिंदू परंपरा। यदि हम तुलसी का पत्ता भी तोड़ते हैं तो हाथ जोड़कर लेते हैं। हरे पेड़ को नहीं काटना है, यह हमारे यहाँ अनपढ़ से अनपढ़ आदमी भी जानता है।

भारत की संस्कृति मुख्यतः अरण्य (वन) संस्कृति है। हमारे यहाँ जीवन के चार आश्रम माने गए हैं। इनमें से तीन आश्रम-ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास वनों में निवास करने से ही संबंधित हैं। चौथा गृहस्थ आश्रम भी अनेक कामों के लिए वनों पर निर्भर है। हमारे शिक्षा-संस्थानों के आश्रम भी वनों में ही थे। वनों में ही दर्शन, साहित्य, अध्यात्म व विज्ञान का अध्ययन-अन्वेषण किया जाता रहा है। सिद्धार्थ पीपल (बोधिवृक्ष) के नीचे ही बुद्ध बने थे। हिमालय को शिवस्वरूप माना गया है। हिमालय के वन ही शिव की जटाएँ हैं। गंगा के तीव्र प्रवाह को शिव रूपी हिमालय ने इन्हीं वनों द्वारा रोककर पुनः पृथ्वी पर प्रवाहित किया था।

प्रकृति की ओर हम कैसे देखें और प्रकृति हमारी ओर कैसे देखे, इस संबंध में यजुर्वेद में एक बहुत सुंदर मंत्र मिलता है। ऋषि कहता है-

''मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।''

-(यजु.36-18)

इसमें तीन बातें कही गई हैं- पहला, संपूर्ण भूतप्राणी (यानि जीव-जंतु) मेरी ओर मित्रता के भाव से देखें। इसी संकल्पना के आधार पर हिंदू प्रार्थना करता है-

'प्रकृतिः पंचभूतानि ग्रहा लोका स्वरास्तथा, दिशः कालश्च सर्वेशां सदा कुर्वन्तु मंगलम्' इस प्रकार हमने प्रकृति के समस्त तत्त्वों से प्रार्थना की है कि वे हमारा मंगल करें, हम पर कृपा बनाए रखें। हमारे प्रति मित्रता का भाव रखें। दूसरा प्रार्थना करने वाला कहता है कि मैं भी प्रकृति को मित्रभाव से देखूँ। यही प्रकृति के प्रति प्रेम, तकनीक-तकनोलॉजी और व्यवहार का हमारा आधार है। तीसरा, हम दोनों अर्थात् प्रकृति और मनुष्य एक-दूसरे को मित्रभाव से देखें। इस प्रकार, वास्तव में जीव-जगत के बीच घनिष्ठ व सार्थक समझदारी का नाम ही पर्यावरण चेतना है। हमारे वेद व साहित्य में ऐसे अनेक मंत्र मिलते हैं जिनमें देवतास्वरूप प्राकृतिक शक्तियों के सान्निध्य की कामना की गई है। पर्यावरण के प्रति देव बुद्धि, देव दृष्टि और मातृभाव रखना हमारी संस्कृति में गहरे रूप में समाया हुआ है। इसी बात को सरल शब्दों में रामचरितमानस में इस प्रकार समझाया गया है-

''जड़ चेतन जग जीव जल सकल राममय जानि।
बंदऊँ सकल पद कमल सदा जोरि जुग पाणि।।''

भारत की संस्कृति मुख्यतः अरण्य (वन) संस्कृति है। हमारे यहाँ जीवन के चार आश्रम माने गये हैं। इनमें से तीन आश्रम-ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास वनों में निवास करने से ही संबंधित हैं। चौथा गृहस्थ आश्रम भी अनेक कामों के लिए वनों पर निर्भर है। हमारे शिक्षा-संस्थानों के आश्रम भी वनों में ही थे। वनों में ही दर्शन, साहित्य, अध्यात्म व विज्ञान का अध्ययन-अन्वेषण किया जाता रहा है। सिद्धार्थ पीपल (बोधिवृक्ष) के नीचे ही बुद्ध बने थे। हिमालय को शिवस्वरूप माना गया है। हिमालय के वन ही शिव की जटाएँ हैं। गंगा के तीव्र प्रवाह को शिव रूपी हिमालय ने इन्हीं वनों द्वारा रोककर पुनः पृथ्वी पर प्रवाहित किया था।

(अर्थात् जड़, चेतन, जग, जीव और जल इन सबको मैं राममय मानकर उनके चरणकमलों की सदा वंदना करता रहूँ)।

इसी पर्यावरण चेतना को ध्यान मे रखते हुए हमारे यहाँ, सीमित, संयमित, सदाचारी जीवनशैली व उपभोगशैली पर सदा जोर रहा है। 'संयमो खलु जीवनम्' जैनदर्शन का यह सिद्धांत संयमित जीवनशैली पर ही जोर देता है। इस प्रकार कुल मिलाकर हमें यह मानना होगा कि संपूर्ण हिंदू दर्शन, हिंदू दृष्टि, हिंदू जीवन व्यवहार, हमारे तीज-त्योहार, परंपराएँ आदि हमेशा से ही पर्यावरण-प्रेमी रहे हैं।

अब समूचे विश्व में पारिस्थितिकी, आर्थिक, ऊर्जा, रोजगार, समता और नैतिकता (Ecology, Economy, Energy, Employment, Equity, Ethics) के पारस्परिक संबंधों को लेकर पुनर्चिंतन प्रारंभ हुआ है। जून 1992 में रिओ-डी-जेनिरो में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित कर एजेंडा-21 नामक विश्व कार्य योजना को स्वीकार किया गया था। पर पर्यावरण की समस्या का स्थायी समाधान तो हिंदू दृष्टि अपनाने में ही है। हिंदू दृष्टि प्रेम के दायरे के विस्तार की दृष्टि है। हमारा नियंत्रण बाहर से नहीं, आंतरिक-नैतिक नियंत्रण के आग्रह का है। प्रकृति का संरक्षण हमारा स्वभाव बने और हम इसके साथ तादात्म्य स्थापित करना सीखें। पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं के प्रति 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के भाव का विस्तार करें। हम पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कार्यों से बचें और पर्यावरण का संरक्षण करने वाले कार्यों एवं व्यवहारों को अपनाएँ-जैसे बिजली, पानी, पेट्रोल-डीजल आदि के प्रयोग में सावधानी व संयम बरतें। कागज का दोनों ओर का पूरा उपयोग करें, स्टेपलर के स्थान पर आलपिन के प्रयोग को प्राथमिकता दें, सार्वजनिक वाहन एवं शेयर टैक्सी का प्रयोग कर पेट्रोल की खपत तथा वायु व ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है। सामान लाने-ले जाने के लिए प्लास्टिक की थैलियों के स्थान पर जूट या कपड़े के थैले का प्रयोग करें। पेड़-पौधे लगाएँ एवं उनको पानी दें। पशु-पक्षियों को न सताएँ व उनके लिए दाना-पानी डालें।

पर्यावरण चेतना की दृष्टि से सदैव इस प्रार्थना को याद रखें -

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः
शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः। सर्वः शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः
सा मा शान्तिरेधि।। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।।

- (यजुर्वेद 36-17)

लेखक विख्यात अर्थशास्त्री एवं चिंतक हैं।

ऋण मुक्ति की अवधारणा एक प्रकार से मोक्ष के साधन के साथ पर्यायक्रम में कर्मभूमि, सुंदरपृथ्वी, उसके पर्यावरण और उसमें निहित जीवन की निरंतरता बनाए रखने का सार्थक प्रयत्न था। पितृ ऋण से मुक्ति अर्थात् धरती पर मानव जीवन की निरंतरता, ऋषि-ऋण से मुक्ति अर्थात् ज्ञान की निरंतरता तथा दैव ऋण से मुक्ति अर्थात् सृष्टि की दैवीय शक्तियों को स्वस्थ, पुष्ट अप्रदूषित बनाए रखने की निरंतरता। हिंदू मनीषियों की धारणा थी कि मनुष्य जीवन कर्म करने के लिए है ताकि मोक्ष प्राप्त हो और इस जीवन का आधार इस धरती पर इन तीन धाराओं के प्रवाह को अर्थात् निरंतरता को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहिए। यह मनुष्य का कर्तव्य है।

मातृ ऋण चुकाए बिना मुक्ति नहीं

दामोदर शाण्डिल्य

भारतीय दर्शन के अनुसार इहलौकिक जीवन के समुचित संचालन व मोक्ष प्राप्ति हेतु तीन ऋणों– दैव ऋण, ऋषि ऋण व पितृ ऋण के शोधन का प्रावधान है। कतिपय विद्वानों ने इनके अतिरिक्त मातृ ऋण को भी महत्त्व दिया है। महान साधक रामकृष्ण परमहंस, श्री गुरु गोलवलकर जी तथा अध्यात्मवेता डॉ. गोपीनाथ कविराज ने इस ऋण के शोधन की भी विवेचना की है।

हिंदू-शास्त्रों में कहा गया है 'ऋणानि त्रिणि अपा कृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत' (अपने) तीन ऋणों को शोधकर (चुकाकर) मोक्ष को प्राप्त करें। इस शास्त्र वचन के मूल भाव को न समझ कर लोक व्यवहार में धन संपदा संबंधी ऋण को चुकाने और पुत्र-संतान उत्पन्न होने तथा पिता के ऋण का पुत्र द्वारा चुकाने के विश्वास की रूढ़ि चली आ रही है। इस विश्वास की रूढ़ि का कारण 'शतपथ ब्राह्मण' में वर्णित 'भूत-ऋण' की चर्चा है। भूत-ऋण का अर्थ कई विद्वानों तथा भाष्यकारों ने मनुष्य-ऋण से लिया है और कई विद्वानों ने पंचभूत से किया है। पंचभूत सृष्टि के उपादान हैं; अतः मानव शरीर, जो कि आत्मा का निवास तथा धर्म का साधन है, भी पंचभूतों से बना है। पंचभूत ही पर्यावरण है। अतः पर्यावरणीय सुरक्षा तथा संरक्षण में योगदान ही भूत-ऋण से मुक्ति है। सामान्य तौर पर तीन ऋणों के शोधन का विचार ही मुख्य विचार है।

शास्त्रों में जिन ऋणों को चुकाने की बात कही गई वे तीन ऋण हैं– ऋषि ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण। इनमें अर्थ, धन संबंधी ऋण का कहीं उल्लेख नहीं है। मानव जीवन पर हम दृष्टिपात करें, तो यह समझ में आता है कि मानव एक शरीर है जिसे भौतिक पंचतत्त्वों से बना, कहा जाता है। इस शरीर में प्राण, मन, बुद्धि तथा इंद्रियाँ हैं, जिससे वह कर्म करता है। इनके अलावा मनुष्य में अध्यात्म विज्ञान तथा अन्य ज्ञान हैं जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ तथा

अलग बनाते हैं। विद्वानों ने मनुष्य के इस विवेचन को तीन श्रेणियों में बाँटा है। इन श्रेणियों को अध्यात्म शास्त्र में सत्ता या संपदा कहा है। ये तीन सत्ताएँ या संपदाएँ हैं- भौतिक सत्ता, कारण सत्ता, विज्ञान सत्ता। मानव शरीर इन तीन संपदाओं की ही समष्टि या योग है। इन सत्ताओं की उपस्थिति ब्रह्मांड में है वहाँ से ही व्यष्टि रूप में मानव में है। वेदवचन है–

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे', 'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे'

(जो कुछ इस शरीर में है वह ब्रह्मांड में है और जो ब्रह्मांड में है वह इस शरीर में है)। कुछ तत्त्वज्ञ तो यहाँ तक कहते हैं कि मानव शरीर में ब्रह्मांड से परे की भी शक्तियाँ विद्यमान हैं।

परंपरा से प्राप्त संपदाएँ

पितृ या पितरों की परंपरा से मानव शरीर की प्राप्ति अपने पिता से होती है। शरीर भौतिक तत्त्वों से बना है, अतः यह भौतिक सत्ता है। इस शरीर में प्राण, मन, बुद्धि और इंद्रियाँ हैं। यह दैवी सत्ता है क्योंकि सृष्टि में ये दैवी शक्तियाँ पूर्व से भी विद्यमान हैं, जो मनुष्य को प्राप्त होती हैं, इसे कारण सत्ता भी कह सकते हैं। मानव जन्म होने के बाद उसको जो ज्ञान व अध्यात्म विज्ञान की प्राप्ति होती है वह ऋषियों -मुनियों, वैज्ञानिकों, बुद्ध पुरुषों की परंपरा से होती है। इसे ऋषि सत्ता या विज्ञान-सत्ता कहते हैं। हिंदू वाङ्मय में विज्ञान का अर्थ प्रत्यक्ष आत्मज्ञान से है। ये जो मानव जीवन के तीन उपादान अर्थात् साधन हमें सृष्टि से मिलते हैं ये ही तीन ऋण हैं– पितृ-ऋण (शरीर) दैव ऋण (मनबुद्धि, प्राण, इंद्रियाँ) और ऋषि ऋण (ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म)।

ऋण शोध की अवधारणा

भारत के प्राचीन हिंदू-मनीषियों ने मानव को एक कृतज्ञ प्राणी माना है और यह व्यवस्था दी है कि सृष्टि में से जिस-जिस ने हमें जो-जो दिया है, उसका आभार मानते हुए हमें उसे लौटना चाहिए। इस व्यवस्था से ही ऋण-शोध की अवधारणा का उद्गम हुआ है। सेमेटिक (ईसाई, इसलाम) चिंतन में कृतज्ञता की भावना नहीं है। सेमेटिक चिंतन के केंद्र में केवल मनुष्य है और सारी प्रकृति-पेड़-

भारत के प्राचीन हिंदू-मनीषियों ने मानव को एक कृतज्ञ प्राणी माना है और यह व्यवस्था दी है कि सृष्टि में से जिस-जिस ने हमें जो-जो दिया है, उसका आभार मानते हुए हमें उसे लौटना चाहिए। इस व्यवस्था से ही ऋण-शोध की अवधारणा का उद्गम हुआ है।

पौधे, जीव-जंतु, नदी-पहाड़ सब उसके उपभोग के लिए हैं (बाइबिल सृष्टि सृजन)। इसी चिंतन का परिणाम है आज का पर्यावरणीय संकट। हिंदू ऋषियों ने मानवजीवन को मोक्षप्राप्ति का साधन मान कर, उसको कर्म योग्य

बनाने के लिए सृष्टि के सभी उपादान प्रदाताओं का आभार माना और केवल आभार ही नहीं माना, अपितु उनको वापिस लौटने की व्यवस्था भी की, जिससे की ये साधन समाप्त न हो जाएँ, अपितु उत्तरोत्तर पुष्ट होते जाएँ। इसी से प्रकृति के साथ पूज्यभाव, सहयोग, सामंजस्य के साथ दोहन की उच्च भावना के संस्कार हिंदू समाज पर पड़े।

ऋण शोध की व्यवस्था

प्राचीन हिंदू-जीवन चार आश्रमों में विभक्त था इनमें से प्रथम तीन आश्रमों में, तीन ऋणों के शोधन की ही व्यवस्था थी। चौथा संन्यास आश्रम वैराग्य तथा नैष्कर्म्य की अवस्था थी। ब्रह्मचर्याश्रम में ही जीवन के प्रारंभ में ज्ञान प्राप्त करना और बाद में उस ज्ञान को प्रवचन आदि द्वारा उसका वितरण करना, इस प्रकार ऋषि ऋण से मुक्ति। वानप्रस्थाश्रम जिसमें यज्ञादि करके दैवीय शक्तियों का पोषण करके दैव ऋण से मुक्ति। गृहस्थाश्रम में मनुष्य मानव जीवन की निरंतरता को बनाए रखते हुए पितृ ऋण से मुक्ति प्राप्त करता है।

ऋण शोध अर्थात् जीवन की निरंतरता– वास्तव में ऋण मुक्ति की अवधारणा एक प्रकार से मोक्ष के साधन के साथ पर्यायक्रम में कर्मभूमि, सुंदरपृथ्वी, उसके पर्यावरण और उसमें निहित जीवन की निरंतरता बनाए रखने का सार्थक प्रयत्न था। पितृ ऋण से मुक्ति अर्थात् धरती पर मानव जीवन की निरंतरता, ऋषि-ऋण से मुक्ति अर्थात् ज्ञान की निरंतरता तथा दैव ऋण से मुक्ति अर्थात् सृष्टि की दैवीय शक्तियों को स्वस्थ, पुष्ट अप्रदूषित बनाए रखने की निरंतरता। हिंदू मनीषियों की धारणा थी कि मनुष्य जीवन कर्म करने के लिए है ताकि मोक्ष प्राप्त हो और इस जीवन का आधार इस धरती पर इन तीन धाराओं के प्रवाह को अर्थात् निरंतरता को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहिए। यह मनुष्य का कर्तव्य है। पर गत कुछ सदियों से मनुष्य कृतघ्न बन कर समग्र पृथ्वी को ही नष्ट करने पर उतारू हो गया है।

प्राच्य तथा पाश्चात्य चिंतन में अंतर क्यों

सेमेटिक मान्यताओं में सृष्टि के सृजन का काल ईसा से 5-7 हजार वर्ष पूर्व ही है। मनुष्य धरती पर एक बार के लिए आता है और मृत्यु के बाद कब्र में अपनी रूह के साथ न्याय के दिन तक पड़ा रहता है और न्याय के दिन ईश्वर उसको अनंत काल के लिए जन्नत या दोजख (स्वर्ग या नरक) में भेज देता है। प्राच्य चिंतन सृष्टि को अनादि, अनंत मानता है। यह पृथ्वी भूलोक है जो कि मृत्युलोक कहलाता है। यहाँ जीव अपने मोक्ष के लिए उत्तरोत्तर जन्म धारण कर अंत में जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति या मोक्ष को प्राप्त करता है। यह जो मूलभूत वैचारिक अंतर है, यह ही आज की विषय परिस्थिति का कारण है। भारतीय दर्शन, वैदिक, जैन, बौद्ध, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धांत और मोक्ष की अवधारणाओं का विश्वासी है, अतः सृष्टि की निरंतरता का पक्षधर है। सेमेटिक दर्शन केवल एक बार जन्म लेने, मृत्यु के बाद अनंत काल तक न्याय के दिन की प्रतीक्षा करने और बाद में अनंत काल तक नरक या स्वर्ग में पड़े रहने का विश्वासी है। इस दृष्टि से हिंदू चिंतन प्रगतिशील, पुरोगामी और आशावादी एवं सृष्टि का संरक्षक, संवर्धक है; सेमेटिक चिंतन लघु दृष्टि और वातरहित बंद बॉक्स।

मातृ-ऋण शोधन

विद्वानों के मत में जिन तीन ऋण से मुक्त होने की बात कही गई है कई विद्वान उसे अपूर्ण मानते हैं। उनके मत में एक ऋण और है और वह है मातृ-ऋण। पितृ

ऋण, दैव ऋण, ऋषि ऋण के शोधन सृष्टि की तीनों धाराओं की निरंतरता बनाए रखने के लिए आवश्यक है, किंतु व्यक्ति और समाज की इहलोक में सुख और शांति तथा मृत्यु के बाद मोक्ष की प्राप्ति हेतु एक और ऋण का शोधन आवश्यक है और वह है मातृ-ऋण। शास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि मातृ-ऋण से मुक्ति के बाद ही मोक्ष मिल सकता है।

सृष्टि में तीन माताएँ

मनुष्य की मानवी-माता जिसने नौ माह अपने गर्भ में रख कर अपने रक्त से विकसित कर भौतिक शरीर को जन्म दिया, अपने आंचल का स्तन्य पिला कर उसे पुष्ट किया, भाषा ज्ञान तथा जीवन जीने की क्रियाएँ सिखा कर उसे कर्म करने योग्य बनाया और जीवन भर अपने वात्सल्य की छाँव में रखकर उसके योगक्षेम की चिंता की, उस जननी जन्मदायी माता का भी मनुष्य पर कर्ज होता है और इसका जिक्र सामान्यतया नहीं होता। हालाँकि उपनिषदों में 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्य देवो भव' में 'मातृ देवो भव' का प्रथम स्थान है। 'मातृपितृ चरण कमलेभ्यो नमः' में भी माता का प्रथम स्थान है, पर 'मातृऋण' शोध की व्यवस्था नहीं है।

दूसरा 'मातृ तत्त्व धरती माता है, जिसे वेदों में भू-देवी कहा है और ऋग्वेद के पृथ्वी-सूक्त में भू-माता का बड़ा मार्मिक, तात्त्विक तथा भावपूर्ण वर्णन किया गया है'। भारतीय संस्कृति में धरती माता और उसका ही एक भू-भाग हमारी भारत माता।

तीसरे मातृत्व के बारे में गत सदी के महान् अध्यात्मवेता, शास्त्री, विद्वान डॉ. गोपीनाथ कविराज कहते हैं कि सृष्टि में व्याप्त तीनों सत्ताओं, भौतिक सत्ता, दैवी-सत्ता और ऋषि सत्ता को भी जन्म देनी वाली एक और सत्ता है और वह है जगजननी, जगदंबा, महामाया। यह ब्रह्मरूपिणी जगदंबा ब्रह्म की शक्ति रूप है। इसी से सारी सृष्टि की सब सत्ताओं का सृजन, पालन, संहार, लय-प्रलय होता है। यह ही ब्रह्म का साक्षात् कराने वाली है। इसकी कृपा के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। वर्तमान युग में महान् अद्वैत वेदांती भगवान् रामकृष्ण परमहंस ने अपने जीवन के उदाहरण से इसे प्रत्यक्ष किया है। डॉ. गोपीनाथ का भी मत है कि जगदंबा की कृपा से ही तीनों ऋणों से मुक्ति संभव है।

सृष्टि में व्याप्त तीनों सत्ताओं, भौतिक सत्ता, दैवी-सत्ता और ऋषि सत्ता को भी जन्म देनी वाली एक और सत्ता है और वह है जगजननी, जगदंबा, महामाया। यह ब्रह्मरूपिणी जगदंबा ब्रह्म की शक्ति रूप है। इसी से सारी सृष्टि की सब सत्ताओं का सृजन, पालन, संहार, लय-प्रलय होता है। यह ही ब्रह्म का साक्षात् कराने वाली है।

मातृ-ऋण से मुक्ति का साधन-केवल 'सेवा'

पूज्य डॉ. गोपीनाथ जी कविराज कहते हैं कि जगदंबा की कृपा प्राप्त करने के लिए केवल एक ही तरीका है वह है 'सेवा कर्म'। सेवा कर्म से जगदंबा संतुष्ट हो कृपा करेंगी उसी से मुक्ति का द्वार खुलेगा।

माता के तीनों रूपों की भक्ति करें

गत सदी के महान् तत्त्वज्ञ, प्रखर मातृभक्त श्री गुरुजी गोलवलकर ने, डॉ गोपीनाथ जी, महर्षि अरविंद, स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस की मातृभक्ति की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए कहा-'कामप्रधान जीवन

सुसंस्कृत मनुष्य के जीवन का लक्षण नहीं है। अंतःकरण में यदि कृतज्ञता का भाव नहीं रहा तो जीवन जंगली हो जाता है। इसलिए सुसंस्कृत हो कर माता के प्रति भक्ति उसके विविध स्वरूपों (जन्मदात्री, धरित्री तथा जगद्धात्री) में नित्य करना ही अत्यावश्यक है।' (श्रीगुरुजी उवाच पृ. 103, श्री गुरुजी समग्र खंड 5 पृ. 84) श्री गुरुजी यह भी कहते थे कि माता के सामान कोई देव नहीं है।

श्रीगुरुजी गोलवलकर के इस वचन में माता के विविध स्वरूपों की बात कही गई है। हमें जन्म देने वाली मानवी माता, धरती माता जो अन्न, जल, वायु, औषधियों से हमारा पोषण करती है और संपूर्ण जगत को धारण करने वाली जगतधात्री जगदंबा/जगन्माता/महामाया। इन तीनों के प्रति कृतज्ञता का भाव और इनकी सेवा भक्ति करना ही सुसंस्कृत मनुष्य का लक्षण है। केवल अपनी अदम्य कामनाओं की पूर्ति में लगे रहना सुसंस्कृत का लक्षण नहीं है, क्योंकि केवल कामनाओं की पूर्ति में लगे रहने से कृतज्ञता की जगह कृतघ्नता का दोष आ जाता है।

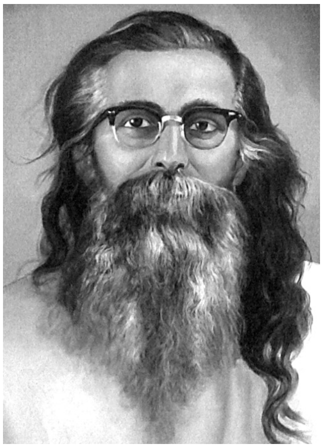
श्री माधव राव सदाशिव राव गोलवलकर

श्री गुरुजी गोलवलकर तथा डॉ. गोपीनाथ जी दोनों इस बात पर एकमत थे कि भक्ति का अर्थ पुष्टि से है, जिस कर्म से माता के अभाव की पूर्ति होकर उसकी पुष्टि हो वह कर्म ही भक्ति और सेवा है। माला जपना, स्तोत्र गायन, अनुष्ठान आदि का अपना महत्त्व है। इससे हृदय में भाव दृढ़ होता है, पर सच्ची भक्ति तो सक्रिय सेवा ही है। जगतधात्री माता जगदंबा कृपा करके इहलोक और परलोक में व्यष्टि और समष्टि को सुख, शांति और आधि, व्याधि, उपाधि से मुक्ति देंगी।

श्री गुरुजी गोलवलकर जीवन भर माता के इन तीनों रूपों की सेवा करते रहे। अपनी जननी की सेवा, धरती माता की अंगभूत भारत माता की सेवा तथा जगदंबा के प्रकट रूप विश्व में सुख शांति, कल्याण तथा अध्यात्म-जागरण हेतु हिंदू संस्कृति और विचार का प्रचार-प्रसार करने में उन्होंने अपना जीवन लगा दिया।

सारांश में कह सकते हैं कि व्यक्तिगत जीवन में सुख, शांति और मृत्यु के बाद मोक्ष प्राप्ति तथा समग्र विश्व में सुख, शांति तथा विश्व में भौतिक प्रवाह, संतति प्रवाह और ज्ञान प्रवाह की निरंतरता बनाए रखने के लिए मानव मात्र को ऋषि ऋण, पितृ ऋण, दैव ऋण के साथ मातृ ऋण को चुकाने का संकल्प लेना चाहिए। जगद्धात्री जगदंबा की सक्रिय सेवा ही उसकी कृपा पाने का एक मात्र साधन है। प्रकृति के प्रति कृतज्ञता, धरती माता के प्रति कृतज्ञता और जन्मदात्री माता के प्रति कृतज्ञता का भाव धारण कर उसकी सेवा करने हेतु मानव के उद्यत होने से ही सुसंस्कृत मानव जीवन का विकास हो, विश्व भूख, भय, आतंक, अशिक्षा, बीमारी आदि से मुक्त हो, सुख, शांति, आत्मीयता, सौहार्द व भाईचारा युक्त, बन सकेगा। विश्व कल्याण का यह ही एक मात्र रास्ता है।

लेखक भारतीय दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान हैं।

संदर्भ :

1. अखंड महायोग का पथ– म. पंडित डॉ. गोपीनाथ कविराज

2. श्री गुरुजी उवाच– सं. दामोदर शाण्डिल्य

आखिर मनुष्य भी पृथ्वी पर जीव की एक प्रजाति ही है।
मानव–प्रजाति को ही पृथ्वी पर जीवन के संपूर्ण अधिकार कैसे हो सकते हैं?
अब सही समय है की पशु–पक्षियों के साथ हमारा दमनकारी और हिंसक
व्यवहार राजनीतिक और आर्थिक चर्चा का हिस्सा होना चाहिए।

क्या पशुओं को मनुष्य की क्रूरता से मुक्त जीवन का अधिकार है?

अखिलेश तिवाड़ी

महाराष्ट्र में पर्युषण पर्व के अवसर पर मांस की खरीद-बिक्री पर प्रतिबंध, जो की कई वर्षों से चला आ रहा था, को लेकर पिछले वर्ष बहुत राजनीति हुई। कुछ राजनीतिक दल अपने विरोध प्रदर्शन को सड़कों पर ले आए। कुछ लोगों ने सोशल मीडिया पर अपने मनचाहे भोजन करने की स्वतंत्रता के अधिकार की बात कही। कुछेक ने अपने मांसाहारी होने पर गर्व भी प्रकट किया। इस वाद-विवाद में चर्चा का केंद्र राजनीतिक दल रहे, पंथ-संप्रदाय रहे, मनुष्य के भोजन की स्वतंत्रता के अधिकार रहे; लेकिन पशुओं का जीवन, उन पर हो रही क्रूरता अथवा उन्हें भी जीवन जीने का अधिकार है इस चर्चा में कहीं नहीं रहा। इस पूरे विवाद में ऐसा कहीं भी देखने को नहीं मिला की मनुष्य के भोजन की स्वतंत्रता का अधिकार तो ठीक है, लेकिन पशु-पक्षी और उनका जीवन जीने का अधिकार भी कोई कम महत्त्वपूर्ण विषय नहीं है। इस पूरी चर्चा में यह दिखाई पड़ा कि हम पशु-पक्षियों के साथ क्या बर्ताव करते हैं। यह तो समाज, अर्थनीति तथा राजनीति में कोई मुद्दा ही नहीं है!

18वीं शताब्दी में मानवजाति ने मनुष्य के द्वारा मनुष्य पर किए जा रहे दुर्व्यवहार और हिंसा को रोकने के लिए 'मानवाधिकारों' का सिद्धांत दिया। मानवाधिकार जब लागू हुए तो मनुष्य ने स्वयं को 'जीवन का अधिकार' दिया। साथ ही यह भी अधिकार दिया कि किसी भी मनुष्य के साथ 'क्रूरता, अमानवीय व्यवहार अथवा अमानवीय दंड दिए जाने का बर्ताव' नहीं किया जाएगा। लेकिन 21वीं सदी में भी हमने मानव-प्रजाति से भिन्न जीव प्रजातियाँ जो कि जीवित हैं, जिनमें भावनाएँ हैं, जो दर्द और खुशी को महसूस कर सकती हैं, जिनमें अपनी प्रजाति और अन्य प्रजातियों के प्रति संवेदनाएँ है, उनके साथ मनमाना व्यवहार करने का स्वयं को अधिकार दे रखा है! हमने स्वयं को 'जीवन का अधिकार' दे दिया लेकिन हम विश्व में आज मनुष्य के हाथों इतने निरीह पशु-पक्षी क्रूरता का शिकार हो रहे हैं,

जितने संभवतः इतिहास में पहले कभी नहीं हुए, उनके जीवन के अधिकार के बारे में कभी विचार भी नहीं करते। आखिर मनुष्य भी पृथ्वी पर जीव की एक प्रजाति ही है। मानव-प्रजाति को ही पृथ्वी पर जीवन के संपूर्ण अधिकार कैसे हो सकते हैं? अब सही समय है की पशु-पक्षियों के साथ हमारा दमनकारी और हिंसक व्यवहार राजनीतिक और आर्थिक चर्चा का हिस्सा होना चाहिए।

ब्रिटिश दार्शनिक जेरेमी बेंथैम ने लिखा है कि किसी भी संवेदनशील प्राणी के साथ मानव को मनमाना बर्ताव करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। उन्होंने कहा की, 'एक पूरा विकसित हुआ अश्व अथवा श्वान मनुष्य के नवजात शिशु से अथवा एक हफ्ते या एक महीने के शिशु से अधिक सचेतन होता है, जिससे आप शिशु की अपेक्षा कहीं अधिक बात कर सकते हैं। पर जिस प्रकार अश्व का मानव के शिशु से अधिक सचेतन होना अथवा आपकी बात समझने में शिशु से बेहतर होना, मानव के शिशु के साथ व्यवहार की कसौटी नहीं बन सकता; उसी प्रकार मनुष्य से भिन्न प्राणियों का चार पाँव होना अथवा उनका स्वरूप मनुष्य से भिन्न होना इस बात का अधिकार नहीं दे सकता कि मनुष्य पशुओं के साथ चाहे जो व्यवहार करे।' बेंथैम कहते हैं कि जब हम पशु-पक्षियों के बारे में चिंतन करते हैं तो हमें यह जानना ही चाहिए कि क्या उन्हें भी पीड़ा होती है? क्या उनकी भी संवेदनाएँ हैं? क्या वे भी अपनी स्वयं की प्रजाति अथवा अन्य प्रजातियों के साथ भावनात्मक संबंध बनाने में सक्षम हैं? अगर 'हाँ' तो फिर हमें पशु-पक्षियों के साथ प्रतिदिन किए जा रहे हिंसक और क्रूर व्यवहार पर गंभीर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

अभी कुछ दिन पहले अमेरिका के वैशन द्वीप की एक घटना पढ़ने को मिली, जिसमें दो श्वान, टिल्ली तथा फोइबे, अपने घर से गुम हो गए। वे करीब दो हफ्ते बाद मिले जब किसी ने स्थानीय पालतू पशुओं से जुड़े

स्वयंसेवकों को फोन पर सूचना दी कि एक श्वान लगातार भाग कर उन तक आता है और फिर नजदीक ही एक दर्रे की तरफ जाता है। जब स्वयंसेवक उन तक पहुँचे तो पता चला की वह श्वान जो भाग-भाग कर आ रहा है वह टिल्ली है और वह अपने मित्र फोइबे की ओर इंगित कर रहा है जोकि उस दर्रे में एक पुरानी सूखी पानी की टंकी में गिर गया है। लगातार दो हफ्तों तक टिल्ली यह प्रयास करता रहा कि उसका मित्र फोइबे सुरक्षित बाहर आ जाए। यह टिल्ली और फोइबे का वास्तविक छायाचित्र है जो कि 'मनुष्य' तक के लिए मित्रता और साथ निभाने की प्रेरणा देता है।

जीवविज्ञान के क्षेत्र में हुए अनेक वैज्ञानिक शोध ये स्थापित कर चुके हैं कि पशु-पक्षी भी एक समृद्ध भावनात्मक जीवन जीते हैं। उनका भी एक सामाजिक जीवन होता है और वे न केवल स्वयं की प्रजाति बल्कि अन्य प्रजातियों से भी संवाद और भावनात्मक संबंध जोड़ सकते हैं। पशु-पक्षियों में संज्ञानात्मक शक्ति होती है और कुछ प्रजातियों में तो सही और गलत क्या है, इसकी समझ भी होती है।

न्यूरोसाइंटिस्ट्स के एक संघ ने कैंब्रिज विश्वविद्यालय में 2012 में एक घोषणापत्र जारी किया जिसे 'चेतना विषयक कैंब्रिज घोषणापत्र' (The Cambridge Declaration on Consciousness) नाम दिया गया। इस घोषणापत्र में इन वैज्ञानिकों ने कहा कि निःसंदेह अब यह

प्रमाणित हो चुका है कि मनुष्य उन तंत्रिकाओं पर अधिकार रखने वाला एकमात्र प्राणी नहीं है जो कि चेतना को उत्पन्न करती हैं। उन्होंने कहा कि मानवेतर प्राणी, जिनमें सभी स्तनधारी जीव, पक्षी और ऑक्टोपास जैसे कई अन्य प्रकार के जीव भी इस प्रकार के तंत्रिका तंत्र से युक्त होते हैं, जो कि संज्ञानात्मक चेतना (cognitive consciousness) को उत्पन्न करता है। ऐसी स्थिति में हम ये समझ सकते हैं की जब एक पशु की हत्या की जा रही होती है तो ऐसा नहीं है कि वह इससे अनभिज्ञ रहता है, ऐसा नहीं है कि उसे इस बात का संज्ञान नहीं रहता कि उसकी हत्या की जा रही है। साथ ही ऐसा भी नहीं है कि उसे पीड़ा नहीं होती अथवा उसके मन में अपने प्रियजनों से, अपने समाज से, बिछुड़ने का दुःख नहीं होता। एक बछड़े को जब उसकी माँ से अलग किया जाता है तो माँ और पुत्र दोनों को दुःखात्मक अनुभूति होती है।

यहाँ कुछ बुद्धिवादियों द्वारा तर्क दिया जा सकता है कि यह भावनात्मक दृष्टिकोण है, लेकिन अर्थशास्त्र की दृष्टि से व्यावहारिक नहीं है। वे कह सकते हैं कि कितने लोग हैं जिनका रोजगार-व्यापार मांसाहार से जुड़ा हुआ है। मांसाहार बंद होने पर उनका क्या होगा? उन्हें हम एक बात तो सीधे कह सकते हैं कि आज भी कितने लोग हैं जिनका रोजगार हत्या और फिरौती से जुड़ा हुआ है, फिर भी हम उनके रोजगार को वैध नहीं ठहराते, तो हम पशुओं की हत्या के रोजगार को वैध कैसे ठहरा सकते हैं? लेकिन यह बात उन्हें जब तक समझ में नहीं आएगी जब तक वे मनुष्य और पशुओं को संवेदना की दृष्टि से भिन्न मानते रहेंगे। दूसरा, जो उन्हें संभवतः समझ आ सकता है उन्हें हम कह सकते हैं कि अर्थव्यवस्था की दृष्टि से, विशेषकर जब हम पृथ्वी पर उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में लेते हुए संवहनीय उपभोग की बात करते हैं, तो मांसाहार खरा नहीं उतरता।

हममें से बहुत लोगों को यह ध्यान में नहीं होगा कि विश्व में मानव की जो भुखमरी की समस्या है उसका समाधान संभव है यदि मांसाहार कम हो जाए। यही नहीं मांसाहार में कमी करके हम विश्व में हो रहे जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग का भी सामना कर सकते हैं। इसका कारण बहुत सरल और स्पष्ट है। पशुओं से जितना मांस मांसाहारियों के भोजन के लिए मिलता है उससे 16 गुना अधिक अनाज पशु खाता है। मांसाहारियों के लिए एक किलो मांस प्राप्त करने के लिए 16 किलो अनाज पशु को खिलाने की आवश्यकता होती है। उस अनाज के उत्पादन के लिए हमें सामान्य से 16 गुना अधिक ऊर्जा का उपयोग करना पड़ता है। ऊर्जा का अर्थ है डीजल, कोयला और आणविक ऊर्जा। इस ऊर्जा का उपभोग और उत्पादन विश्व भर में पर्यावरण को दूषित कर जलवायु संकट उपस्थित कर रहा है। यह अनावश्यक ऊर्जा का उपयोग यहीं नहीं रुकता। पशु को मार कर उसका मांस लेने के बाद उसका प्रसंस्करण किया जाता है, उसके बाद उसका रेफ्रिजरेशन - ट्रांसपोर्टेशन के समय भी, मार्केट में भी और घरों में भी - ऊर्जा का खर्च होती है। इसके साथ ही पशुओं के लिए चारा-अनाज उत्पन्न करने के लिए कई गुना अधिक भूमि का उपयोग तथा सिंचाई के लिए कई गुना अधिक भूजल का उपयोग तथा ऐसे अनेक छोटे-बड़े कार्य मिलकर मांसाहार को शाकाहार से कई गुना अधिक पृथ्वी की जलवायु लिए घातक बनाते हैं। यह सब ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु संकट को और सघन बनाता है। साथ ही मानव समाज को भुखमरी से बाहर लाने के लिए जिन संसाधनों की आवश्यकता है, उनको उन पशुओं के लिए उपयोग में ले लिया जाता है जिन्हें मांसाहारियों के भोजन के लिए पशु फार्म में जन्मा

कर काटने के लिए तैयार किया जाता है।

यही स्थिति भूजल की भी है। अमेरिका के संदर्भ में, अपनी पुस्तक 'भोजन क्रांति' में जॉन रोब्बिंस बताते हैं की मनुष्य के भोजन के लिए मांस का जो उत्पादन किया जाता है उसके लिए इतने अधिक पानी की आवश्यकता होती है की वह हमारी समझ के बाहर है। लगभग आधा किलो गौमांस के उत्पादन में आधा किलो आलू के उत्पादन से 99.6 प्रतिशत अधिक पानी की आवश्यकता है। इसे वे दूसरी तरह समझाते हैं कि व्यक्ति अगर प्रतिदिन 7 मिनट तक शावर के नीचे स्नान करे तो एक वर्ष में लगभग बीस हजार लीटर पानी का प्रयोग करता है और केवल आधा किलो गौमांस के उत्पादन में भी लगभग बीस हजार लीटर पानी, बल्कि इससे थोड़ा अधिक ही लगता है! तो अगर कोई व्यक्ति गौमांस भक्षण त्याग देता है तो वर्ष भर में वह ग्यारह लाख लीटर से अधिक पानी की बचत कर सकता है। यही स्थिति मांसाहार के लिए पशु पालन के लिए उपयोग में ली जा रही खेती की भूमि के उपयोग की भी है। लगभग आधा किलो गौमांस के उत्पादन के लिए 8 किलो अनाज-चारे की आवश्यकता होती है। इसका अर्थ है की हमें सामान्य से 94 प्रतिशत अधिक भूमि की आवश्यकता होगी। इसका यह भी अर्थ है की हमें 94 प्रतिशत अधिक रासायनिक खाद भूमि में डालना पड़ता है, जितने अनाज का हम उत्पादन करते हैं उसका लगभग 70 प्रतिशत मांसाहार के लिए पाले जा रहे पशुओं के काम आता है।

अगर ये भूमि, जल और ऊर्जा के संसाधन हम विश्व भर में, जो मनुष्य और छोटे बच्चे भुखमरी का शिकार हो रहे हैं उनके दो समय के भोजन के लिए उपयोग में लें तो केवल 10-20 वर्षों में यह स्थिति हो सकती है की विश्व में कोई बच्चा या उसके माँ-बाप भुखमरी से नहीं मरे। विश्व में हो रहा जलवायु संकट और ग्लोबल वार्मिंग की आपदा से बचने के लिए इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज, (आईपीसीसी) के अध्यक्ष द्वारा भी यह सुझाव दिया गया है की हमें मांसाहार में कटौती करनी चाहिए। उनका कहना है की ग्लोबल वार्मिंग के कारणों को कम करने की जो हमारी त्वरित आवश्यकता है उसमें यह कदम सबसे अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकता है। अगर लोग यह भी निर्णय ले लें की अपने मांसाहार में 25 प्रतिशत कटौती करेंगे अथवा अगर वे हफ्ते में 7 दिन मांसाहार करते हैं तो अब 5 या 6 दिन ही करेंगे तो भी ग्लोबल वार्मिंग को घटाने में एक बहुत बड़ा योगदान हो सकता है। हमारे यहाँ भारत में कई लोग मंगलवार या शुक्रवार को अपने पंथ-संप्रदाय की मान्यता के प्रति श्रद्धा के कारण मांसाहार नहीं करते। अपनी इच्छा से, इसी प्रकार का कोई व्रत-नियम हम पृथ्वी पर मानव सभ्यता, मानव-प्रजाति तथा अन्य जीव-प्रजातियों की रक्षा के लिए भी अपना सकते हैं।

सभ्यता के विकास क्रम में क्योंकि हम जंगलीपन से उभर कर आए हैं तो हम यह कह सकते हैं की ऐसा नहीं रहा होगा कि भारतीय समाज में भी कभी मांसाहार प्रमुख न रहा हो। लेकिन ऐसा भी नहीं था कि प्रारंभ से ही पशुओं के प्रति दया का भाव भी न रहा हो। फ्रेड्रिक नीत्जे ने कहा कि हर युग के जो संवेदनशील मन थे उनमें पशुओं के लिए दया का भाव रहा। भारत में भी यह बात अक्षरशः लागू होती है। समय के साथ जैसे-जैसे भारत का वृहत् समाज इस योग्य होता चला गया, शाकाहार पर बल भी बढ़ता गया। आज विश्व की जनसंख्या में अधिसंख्य शाकाहारी हिंदू हैं। बौद्ध मत में भी जहाँ करुणा पर इतना बल है शाकाहार का प्रचलन नहीं है। तिरुवल्लुवर कहते हैं, 'वह सच्ची करुणा का अभ्यास कैसे कर सकता है जो कि एक पशु का मांस खाता हो अपने स्वयं के मांस को मोटा करने के लिए?' जीव हत्या की बात तो बहुत दूर है श्रीकृष्ण अपने एक संबंधी को इस बात तक की

मांसाहार में कमी करके हमे जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग का भी सामना कर सकते हैं। पशुओं से जितना मांस मांसाहारियों के भोजन के लिए मिलता है उससे 16 गुना अधिक अनाज पशु खाता है। उस अनाज के उत्पादन के लिए हमें सामान्य से 16 गुना अधिक ऊर्जा का उपयोग करना पड़ता है। ऊर्जा का अर्थ है डीजल, कोयला और आणविक ऊर्जा। इस ऊर्जा का उपभोग और उत्पादन विश्व भर में पर्यावरण को दूषित कर जलवायु संकट उपस्थित कर रहा है।

ताड़ना देते हैं कि वह अपने क्रोध को शांत करने के लिए एक वृक्ष को काट रहा था! वे कहते हैं कि मनुष्य को प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जो कि उसके जीवन के लिए आवश्यक है। वे कहते हैं की व्यर्थ में किसी भी निरीह और निरपराध जीव को नष्ट करने वाला कोई भी समाज स्वयं की भी रक्षा नहीं कर सकता क्योंकि सारा जगत और इस जगत की प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुडी हुई है। हमारे द्वारा विश्व में जो किया जा रहा है वह अंततोगत्वा हम स्वयं के साथ ही कर रहे हैं। मनुष्य के अलावा सृष्टि में जो जीवन है उनके साथ मनुष्य का बर्ताव हमारे वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक संवाद का विषय बन पाए तो इसमें मनुष्य समाज का ही सबसे बड़ा कल्याण होगा। अपना भारतीय समाज और अधिक करुणावान बने, जीवों के प्रति संवेदना का भाव उसमें आए, वह और अधिक श्रेष्ठता की और अग्रसर हो इसके लिए भारत के कुछ ग्रंथों से नीति वाक्य यहाँ प्रस्तुत हैंः-

भागवत पुराण में कथन है की 'हिरण, ऊँट, गंधर्व, वानर, मूषक, रेंगने वाले जानवर, पक्षी इत्यादि को व्यक्ति को अपने बच्चों की तरह देखना चाहिए और अपने बच्चों और इन प्राणियों में कोई भेद नहीं करना चाहिए।'

मनुस्मृति में लिखा है 'बिना जीवित प्राणी को चोट और हानि पहुँचाए हम कभी मांस उपलब्ध नहीं कर सकते और सचेतन प्राणी को चोट पहुँचाना स्वर्ग के सुखों से हमें वंचित करता है, इसलिए हमें मांस का त्याग कर देना चाहिए।'

'मनुस्मृति' में कहा गया है कि 'वह जो पशु के वध की अनुमति देते हैं, वे जो उसको काटते हैं, वे जो उसको मारते हैं, वे जो मांस बेचते हैं अथवा खरीदते हैं, वे जो उसे पकाते हैं, वे जो उसे परोसते हैं और वे जो उसे खाते हैं, उन सब को पशु की हत्या करने वाला माना जाना चाहिए। इससे बड़ा कोई पाप नहीं है कि व्यक्ति अपने शरीर के मांस को अन्य जीवों के मांस के भक्षण के द्वारा बढ़ाना चाहे।'

'महाभारत' के अनुशासन पर्व में उपदेश है, 'मांस को खरीदनेवाला अपनी संपदा के आधार पर हिंसा करता है; जो मांसभक्षी है वह उसके स्वाद को लेकर हिंसा करता है; जो जीव की हत्या करता है वह जीव को बांधकर और मारकर हिंसा करता है, अर्थात्- तीन प्रकार की हत्या है। वह जो मांस लेकर आता है या लेने के लिए भेजता है, वह जो पशु के अंगों को काटता है और वह जो मांस खरीदता है, पकाता है और खाता है - इन तीनों को ही मांसभक्षी माना जाना चाहिए।'

महाभारत में ही कहा गया है - 'क्रूरता से परहेज करना सबसे बड़ा धर्म है। क्रूरता से परहेज करना सबसे बड़ा आत्म संयम है। क्रूरता से परहेज करना सबसे बड़ा उपहार है। क्रूरता से परहेज करना सबसे बड़ी तपस्या है। क्रूरता से परहेज करना सबसे बड़ा यज्ञ है। क्रूरता से परहेज करना सबसे बड़ी शक्ति है। क्रूरता से परहेज करना सबसे बड़ा मित्र है। क्रूरता से परहेज करना सबसे बड़ी प्रसन्नता है।'

लेखक सामाजिक, राजनीतिक विचारक हैं।

सदियों से हिमालय भारत का प्राकृतिक प्रहरी रहा है। इतिहास साक्षी है कि भारत के लिए हिमालय का भौगोलिक व सामरिक महत्त्व रहा है। आज़ादी मिलने के बाद चीन के आक्रामक रुख और भारत के समर्पण भाव के कारण इस सुरक्षा कवच का विघटन शुरू हो गया। नेहरू सरकार द्वारा अत्यंत सहजता से तिब्बत को चीन का अंग स्वीकारना, आगामी वर्षों में भारत के लिए घातक सिद्ध हुआ।

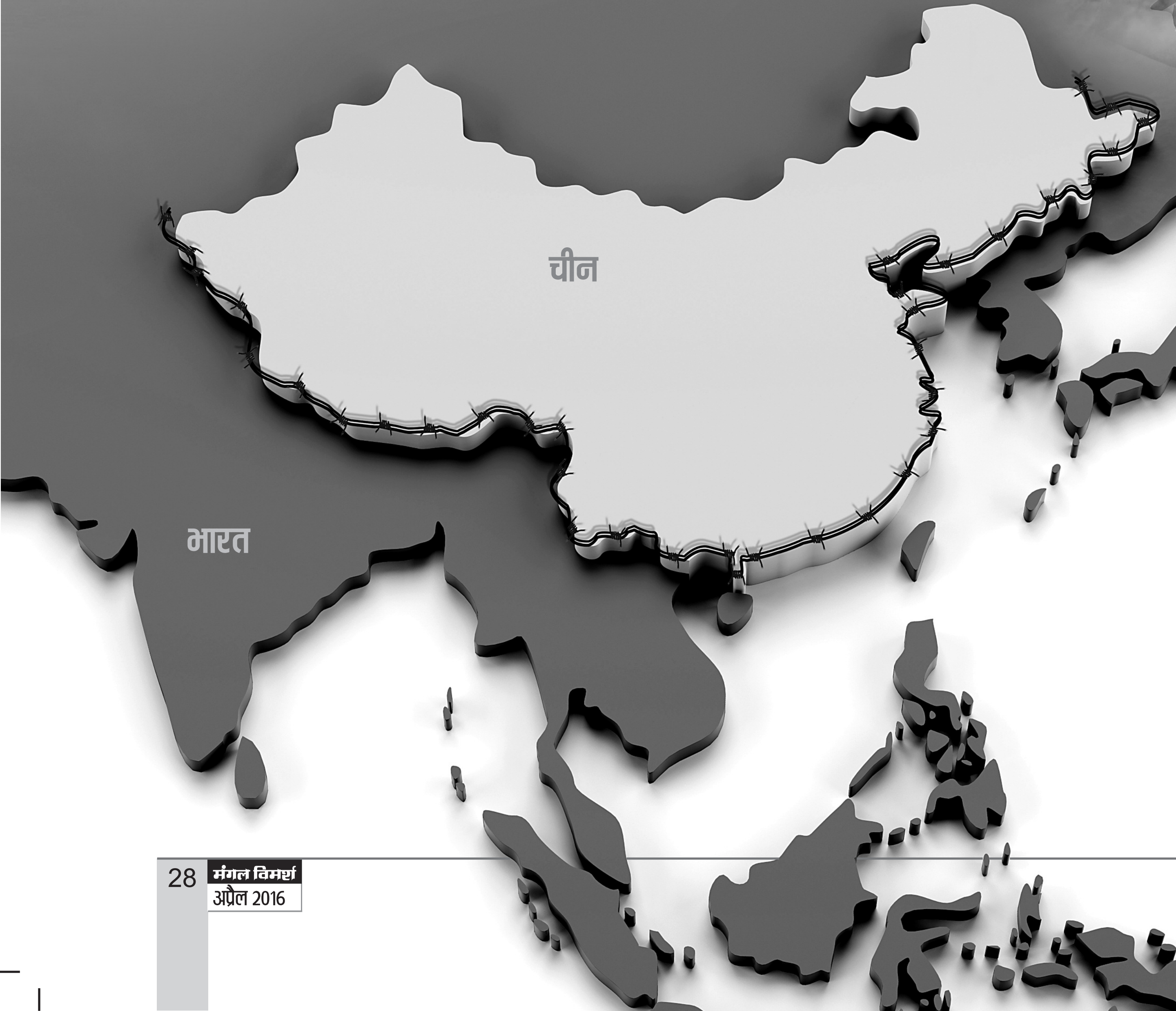

-डॉ. सतीश कुमार

हिमालय के सीमावर्ती देशों में चीन की घुसपैठ और भारत की सुरक्षा

कई दशकों बाद भारत की विदेश नीति में बुनियादी परिवर्तन की ताल सुनाई पड़ रही है और इसकी गूँज दुनिया के अन्य हिस्सों में महसूस की जा सकती है। दरअसल इसकी शुरुआत वाजपेयी सरकार के समय ही हो गई थी, लेकिन इक्कीस राजनीतिक दलों के महागठबंधन में यह सोच दब गई। लेकिन मोदी सरकार पूरी तरह से अपने बूते पर खड़ी है, उसे बैसाखी की जरूरत नहीं है। मोदी सरकार ने चीन के डेगश्यांगपिंग की तरह विचारों की नीति को दरकिनार करते हुए महज एक सोच राष्ट्रीय-हित को सामने रखा, इसके अंतर्गत भारत ने न केवल हिमालय के अँचल देशों में अपनी सुरक्षा को चाक-चौबंद किया बल्कि, चीन से आर्थिक संबंध को भी नई ऊँचाई पर ले जाने की शुरुआत की। अमेरिकी राष्ट्रपति की भारत यात्रा के

तिब्बत के हड़पने का खामियाजा महज सामरिक ही नहीं रहा, बल्कि प्राकृतिक भी बन गया। चीन ने तिब्बत के एक बड़े भाग को आणविक कूड़ेदान की प्रयोगशाला बना दिया है। चीन ने ऐसा करने के लिए तिब्बत के घने जंगलों को काटना शुरू कर दिया। उल्लेखनीय है कि भारत के मैदानी इलाकों में बहने वाली महत्त्वपूर्ण नदियाँ तिब्बत से निकलकर, नेपाल के रास्ते भारत की ओर अपना रुख करती हैं। ये ब्रह्मपुत्र, यांगसी और सतलुज हैं।

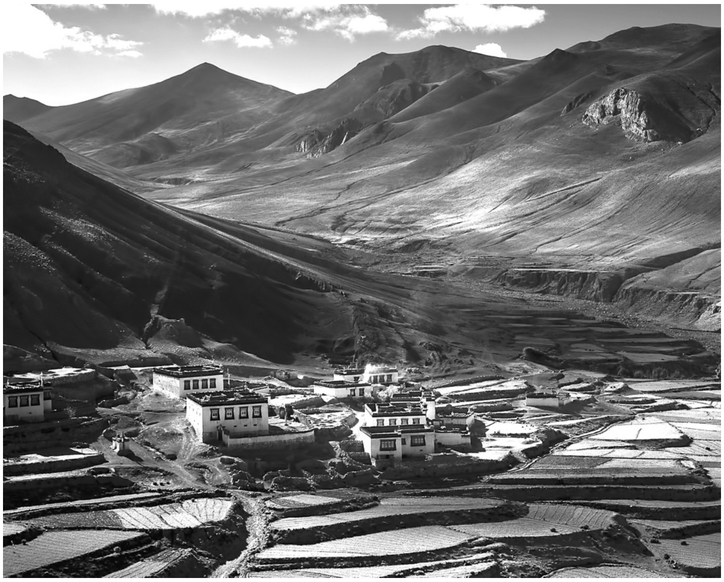

दौरान चीन के तेवर इस बार उतने उग्र नहीं थे, जितने पहले हुआ करते थे। भारत की स्थिति आज बैडमिंटन शटल की तरह नहीं है जहाँ दो-दो देश अपनी इच्छा के अनुसार उसे उछालते रहें, भारत खुद एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया है। चीन में डेंग ने 70-80 के दशक में चीन की विदेश नीति को विचारों से मुक्त कर राष्ट्रीय हित में ला दिया था। मोदी सरकार ने हिमालय के सीमावर्ती देशों जैसे भूटान व नेपाल में एक नई शुरुआत के साथ भारत की विदेश नीति को नया आयाम दिया है।

हिमालय की स्वाभाविक और प्राकृतिक शृंखला भारत की सुरक्षा का पुख्ता इंतजाम था। महत्त्वपूर्ण धर्म ग्रंथों में भी हिमालय शृंखला की चर्चा है, जो भारतीय संस्कृति के अभिन्न स्वरूप के रूप में जाना जाता है, जो करोड़ों की आबादी के भरण-पोषण के साथ आध्यात्मिक बल का परिचायक रहा है। हिमालय की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर ब्रह्मपुत्र एवं सिंधु नदियों का विस्तार है। हिंदुकुश, काराकोरम और पामीर हिमालय शृंखला से जुड़ जाते हैं। करीब 2500 कि.मी. तक की पर्वत शृंखला कश्मीर से अरुणाचल प्रदेश, पश्चिम से पूर्व तक भारत के प्रहरी के रूप में काम करती है। प्रसिद्ध कवि कालिदास ने भी महत्त्वपूर्ण कृति 'कुमार संभव' में हिमालय के भौगोलिक और सामरिक महत्त्व की चर्चा की है। इसकी गोद में कई महत्त्वपूर्ण देश, यथा-तजाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, पाकिस्तान, भारत और म्यंमार आदि बसे हैं। जहाँ इसलाम, बौद्ध और हिंदू धर्म का अद्भुत समन्वय भी है।

यह दुर्भाग्य है कि पिछले सात दशकों में भारत की पकड़ हिमालय की सीमाओं पर कमजोर पड़ती गई और चीन निरंतर अपने प्रभाव का विस्तार करता गया। भारत में मुगलकाल तक हिमालय की सीमाओं में कोई बदलाव नहीं आया, जबकि उस समय चीन में मींग साम्राज्य काफी मजबूत था। ब्रिटिश काल में भारत की स्थिति ज्यादा मजबूत थी। ग्रेटगेम के खत्म होने के उपरांत

1914 में तिब्बत के साथ शिमला समझौते की नींव डाली गई और मैकमोहन लाइन को भारत और तिब्बत के बीच की सीमा तय किया गया।

बात आजादी के बाद बिगड़नी शुरू हो गई। जब भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू चीन के झाँसे में घिरते गए। शुरू में भावनात्मक रूप में और बाद में डर कर। 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' का नारा भी संभवतः असहज और अप्रासंगिक था। जहाँ चीन अड़ियल और हठधर्मिता का रुख अपनाए हुए था, वहीं भारत अत्यंत समर्पण के मूड में दिखा। जब चीन ने तिब्बत को हड़पकर उसे अपना अभिन्न हिस्सा बना लिया तो भारत ने भी अत्यंत ही सहजता से तिब्बत को चीन के अभिन्न हिस्से के रूप में स्वीकार कर लिया। भारत के लिए हिमालय के रूप में स्थापित सुरक्षा कवच का विघटन उसी समय से शुरू हो गया।

अभी तक सीमा विवाद को लेकर 14 सत्र की वार्ता दोनों देशों के बीच हो चुकी है, लेकिन बात सुलझने के बजाए और उलझती ही जा रही है, क्योंकि चीन जान बूझकर ऐसा कर रहा है। चीन जम्मू-कश्मीर को विवादास्पद क्षेत्र कहता है, तो उसका कारण सिर्फ पाकिस्तान को खुश करना नहीं है, बल्कि चीन इस क्षेत्र में अपनी पैठ बनाकर भारतीय सुरक्षा को हर तरह से कमजोर करने की कोशिश में है।

चीन ने अपनी रणनीति के तहत पहले तिब्बत, फिर भारत के पूर्वी राज्यों– अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम पर अपनी गिद्ध दृष्टि डालनी शुरू कर दी। कश्मीर में घुसपैठ शुरू कर दी। अपनी चाल को अंजाम देने के लिए चीन ने नेपाल और भूटान को घेरे में लेने की शुरुआत कर दी। रेल और सड़क के जाल फैलाने शुरू कर दिए। चीन भारत को सामरिक तरीके से घेरने की कोशिश में आज भी सक्रिय है। तिब्बत को हड़पने के साथ ही चीन ने भारतीय सीमा में घुसपैठ भी शुरू कर दी। तिब्बत के हड़पने का खामियाजा महज सामरिक ही नहीं रहा, बल्कि प्राकृतिक भी बन गया। चीन ने तिब्बत के एक बड़े भाग को आणविक कूड़ेदान की प्रयोगशाला बना दिया है। चीन ने ऐसा करने के लिए तिब्बत के घने जंगलों को काटना शुरू कर दिया। उल्लेखनीय है कि भारत के मैदानी इलाकों में बहने वाली महत्त्वपूर्ण नदियाँ तिब्बत से निकलकर, नेपाल के रास्ते भारत की ओर अपना रुख करती हैं। ये ब्रह्मपुत्र, यांगसी और सतलुज हैं। न केवल भारत बल्कि बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, थाईलैंड, म्यंमार, वियतनाम, लाओस और कंबोडिया जैसे अन्य और देश भी हैं जहाँ तिब्बत से होकर निकलने वाली नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ इन देशों की जीवन रेखा हैं।

अगर भारत की विदेश नीति का प्रारंभ नेहरू की सोच और सिद्धांतों पर होता है, तो दूसरा चरण वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के भूटान और उसके उपरांत नेपाल की यात्रा से बनता है। सात दशकों में किसी भी भारतीय प्रधानमंत्री ने ऐसा कभी नहीं किया कि पद संभालने के बाद पहली विदेश यात्रा भूटान की की हो। कई दशकों तक भूटान को हम सामरिक खाँचे से बाहर रखते रहे। नतीजा चीन की शक्ति के विस्तार के रूप में देखा गया। मोदी ने भूटान की यात्रा कर कई कूटनीतिक संदेश विश्व को दिए हैं। भारत हिमालय-क्षेत्र के देशों में चीन या किसी अन्य देश की दखलअंदाजी को सहन नहीं करेगा। दूसरा, भारत जब तक इन देशों पर अपनी पकड़ मजबूत नहीं बना पाता, तब तक भारत की छवि एक सशक्त शक्ति केंद्र के रूप में नहीं बन पाएगी।

हिमालय फ्रंटियरः वर्चस्व की लड़ाई

हिमालय के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व की विवेचना कई इतिहासकारों ने बखूबी की है। दरअसल भविष्य में हिमालय के क्षेत्र में बसे देशों के बीच वर्चस्व की लड़ाई को भी नकारा नहीं जा सकता। इतिहास के पन्नों में 'ग्रेटगेम' की कहानी अंकित है। प्रकृति का यह ऐसा स्वरूप है कि हर शक्ति इस पर अपनी पैठ बनाना चाहती है। 20वीं शताब्दी के आरंभ में ब्रिटिश साम्राज्य ने रूस और चीन को एक निश्चित दूरी पर रखने के लिए बल का प्रयोग किया। अपने उपनिवेश और स्वार्थ को जिंदा रखने के लिए आंग्ल-रूस युद्ध भी हुए। चीन सैनिक रूप से कमजोर था, इसलिए चीन को संभालने में ब्रिटेन को ज्यादा दिक्कत नहीं हुई। लेकिन भारत की स्वंतत्रता के बाद से, विशेषकर भारत की लचर विदेश नीति की वजह से भारत ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा सुपुर्द किए गए सामरिक वर्चस्व को बनाए रखने में सफल नहीं रह पाया। चीन की चाल और सैनिक व्यवस्था अंग्रेजों के द्वारा बनाए गए 'बफर स्टेट' के घरौंदों को एक के बाद दूसरे को तोड़ने लगी। करीब पाँच दशकों में हिमालय के विभिन्न खंडों में बेतरतीब फैली पहाड़ियों पर पहले जहाँ भारत की तूती बोलती थी, वहाँ अब चीन का झंडा फहराया जाने लगा। चीन तिब्बत को निगलते हुए अपना फन नेपाल के तराई तक फैलाने लगा। भारत के चार महत्त्वपूर्ण राज्यों की सीमाएँ नेपाल से मिलती हैं। चीन अपनी पूर्व नियोजित सोच के अनुरूप लद्दाख और अरुणाचल प्रदेश को अपना अंग मानता रहा। पाकिस्तान द्वारा कब्जाए गए कश्मीर में दिए गए भूभाग के जरिए चीन दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों में अपने पैर फैलाने लगा। 14वीं शताब्दी के एक महत्त्वपूर्ण भ्रमणकारी मार्क पोलो ने हिमालय की पहाड़ियों पर भ्रमण के दौरान यह बात कही थी कि 'जो भी शक्ति इन क्षेत्रों को अपने चंगुल में कर लेगी वह एशिया का मालिक होगा और जो एशिया का मालिक होगा वह दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति बनेगा।' मार्क पोलो के कथन की पुष्टि प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ भूगोलवेता मैकाइंडर ने भी की है। मैकाइंडर का सिद्धांत 'हिंटर लैंड' और पाइवोट इस क्षेत्र की राजनीतिक वर्चस्व का सैद्धांतिक विश्लेषण करता है।

दरअसल 1962 के युद्ध के पहले भारत इस भ्रम में था कि चीन कभी भी भारत से युद्ध नहीं करेगा। इसी कूपमंडूकता के कारण भारत के पास न तो कोई सार्थक चीन नीति थी और न ही दक्षिण एशियाई नीति।

चीन के तत्कालीन प्रधानमंत्री वैन जियाबाओ की 15-17 दिसंबर, 2010 की भारत यात्रा ने सीमा विवाद को और पेचीदा बना दिया। करीब 3,500 कि. मी. की सीमा

रेखा को लेकर कोई सार्थक बातचीत दोनों देशों के बीच में नहीं हो पाई, बल्कि चीन के सरकारी पत्र द्वारा यह कहा गया कि भारत और चीन की सीमा महज 2,000 कि.मी. तक सिमटी हुई है। 'पीपुल्स डेली' समाचार पत्र ने भारतीय प्रमाण को गलत और बेबुनियाद करार दिया है। यह सब कुछ चीन के सरकारी पत्र में उसी समय प्रकाशित किया गया, जब चीन के प्रधानमंत्री भारत के दौरे पर थे। चीन में पूर्व भारतीय राजदूत एस. जयशंकर ने चीन की दलील को एक खतरे का संकेत माना है। सितंबर, 2010 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने भी यह कहा था कि चीन जानबूझकर भारत के उन संवेदनशील क्षेत्रों में अतिक्रमण कर रहा है, जो भारतीय सुरक्षा के लिए अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

चीन की सोच में सीमा विवाद को लेकर बुनियादी बदलाव देखा जा सकता है। चीन ने बड़ी ही कुटिलता के साथ सीमा विवाद को अपने सामरिक विस्तार के मोहरे की तरह प्रयोग किया है। दोनों देशों के बीच सीमा विवाद का हल ढूँढने का प्रयास 1986 से ही किया जा रहा है। अभी तक सीमा विवाद को लेकर 14 सत्र की वार्ता दोनों देशों के बीच हो चुकी है, लेकिन बात सुलझने के बजाए और उलझती ही जा रही है, क्योंकि चीन जान बूझकर ऐसा कर रहा है। चीन जम्मू-कश्मीर को विवादास्पद क्षेत्र कहता है, तो उसका कारण सिर्फ पाकिस्तान को खुश करना नहीं है, बल्कि चीन इस क्षेत्र में अपनी पैठ बनाकर भारतीय सुरक्षा को हर तरह से कमजोर करने की कोशिश में है। उल्लेखनीय है कि अक्साईचीन प्रदेश में सड़क निर्माण के कारण ही चीन ने सीमा विवाद को 1960-62 के बीच विस्फोटक बनाया था। इसी मार्ग से लौकनोर (तिब्बत) में परमाणविक अस्त्रों के परीक्षण स्थल तक उसकी पहुँच बनती है। दरअसल यहीं से पाक-अधिकृत कश्मीर के रास्ते चीन ग्वादर के बंदरगाह तक पहुँच सकता है। चीन की दृष्टि हिंद महासागर पर भी है। चीन बड़े पैमाने पर नौसैनिक शक्ति का विस्तार दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में कर रहा है।

चीन भारत की सीमाओं के इर्द-गिर्द जाल बुनने का काम पिछले कई वर्षों से कर रहा है। हिमालय की तराई में बसे हुए देशों के बीच सड़क और रेल संपर्कों का निर्माण चीन की चाल है। चीन के काषार और पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद को जोड़ने वाले काराकोरम हाइवे की लंबाई 1300 कि.मी. है। इस राजमार्ग को फ्रेंडशिप हाईवे का नाम दिया गया है। पिछले कुछ वर्षों में चीन द्वारा इस सड़क की चौड़ाई 10 मी. से 30 मी. तक की जा चुकी है। चीन ऐसा इसलिए कर रहा है कि युद्ध या संघर्ष की स्थिति में उसकी सेना और सैन्य सामान को एक जगह से दूसरी जगह द्रुत गति से पहुँचाया जा सके।

पिछले कुछ वर्षों में चीन के सामरिक विस्तार को समग्र रूप में देखें तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत ही उसका प्रमुख लक्ष्य है। दरअसल मौजूदा हालात 1960-62 से भी बदतर हैं। सितंबर, 1962 को चीन की सेना ने आक्रमण कर दिया था और भारत की सेना पीछे हट गई थी। पुनः पूर्वी सीमा के भीतर तक चीन की सेना आ घुसी थी। पश्चिमी सीमा पर चीन ने करीब 13 भारतीय सैनिक ठिकानों पर कब्जा कर लिया था, लेकिन अंतरराष्ट्रीय दबाव के कारण 24 घंटे के भीतर ही चीन की सेना उन जगहों को छोड़कर अपने बैरक में वापस लौट गई थी। मौजूदा हालात और चीन की नीयत दोनों ही समीकरण 1962 से भी खतरनाक हैं। इस बार चीन ने भारत की संप्रभुता को चुनौती दी है। पूर्वी और पश्चिमी सीमा पर नए सिरे से विवाद को जन्म देकर

अगर नेहरू में सामरिक सूझ-बूझ होती तो भारत न केवल 1962 का युद्ध जीत जाता, बल्कि 1962 के बाद बनी भारत के गले में सुरक्षा की हड्डी यानी कश्मीर समस्या भी नहीं होती। तिब्बत एक स्वतंत्र देश होता। भारत की सुरक्षा उत्तरी सीमा से पूरी तरह चाक-चौबंद होती। ब्रह्मपुत्र की धाराओं के साथ खिलवाड़ नहीं होता। तिब्बत आणविक प्रक्षेपास्त्रों का अड्डा नहीं बनता। भारत में नक्सलवाद की लपटें नहीं उठती, जो आज हमारे देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए अहम प्रश्न बन गया है।

चीन ने भारत की अखंडता पर प्रश्न उठाया है। कश्मीर का भौगोलिक ढाँचा तीन भागों में बंटा हुआ है। 45 प्रतिशत हिस्सा भारत के पास है, शेष 20 प्रतिशत पाकिस्तान के कब्जे में है, 35 प्रतिशत पाकिस्तान ने चीन के हवाले कर दिया है। चीन सुनियोजित ढंग से पाक-अधिकृत कश्मीर में अपना सैनिक विस्तार कर भारत की सुरक्षा को और कमजोर करना चाहता है।

चीन भारत को अपने गंभीर प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखता है। इसलिए वह हर कीमत पर भारत को कमजोर करने की कोशिश में है और इसके लिए वह हर प्रकार की जोर आजमाइश कर रहा है। चीन के सरकारी पत्र 'पीपुल्स डेली' में कहा गया कि भारत किसी भी तरह चीन का मुकाबला नहीं कर सकता। एक दूसरे पत्र में चीनी विश्लेषक दाई वींग ने यह माना कि संभवतः भारत और चीन के बीच भले ही युद्ध न हो, लेकिन शीत युद्ध की गर्मी युद्ध का माहौल तैयार कर सकती है। प्रो.अमिताभ मट्टू के अनुसार चीन हर तरह से इस बात की ताकीद कर रहा है कि एशिया में एक मात्र शक्ति है– वह है चीन की शक्ति। इसलिए चीन अपनी सामरिक शक्तियों का न केवल प्रसार कर रहा है, बल्कि उन शक्तियों का संवर्धन भी कर रहा है । सुरक्षा विशेषज्ञ मोहन मलिक के अनुसार चीन भारत को एक शक्ति के रूप में उभरने नहीं देना चाहता। चीन ने 2005 के पहले ऐसा कभी नहीं कहा कि अरुणाचल प्रदेश तिब्बत का दक्षिणी हिस्सा है या 1962 का अधूरा काम। चीन की नीति में तीखापन 2005 में आया। मलिक यह मानते हैं कि चीन यह सब कुछ जानबूझकर कर रहा है। उल्लेखनीय है कि चीन के भीतर पीएलए अर्थात् चीन की सेना महत्त्वपूर्ण शक्ति केंद्र है। 'रिसर्च और एनालिसिस विंग' (रॉ) के पूर्व प्रमुख बी. रमन का मानना है कि पीएलए का प्रशिक्षण और प्रकृति पूरी तरह भारत विरोधी है।

दूसरी तरफ भारत-चीन नीतियों के नीति-निर्धारक आज भी भ्रम में जी रहे हैं। 1962 में मिली शिकस्त के बावजूद यह माना जा रहा है कि भारत 1962 जैसी स्थिति पैदा नहीं होने देगा, लेकिन जिस तरह की चूक की वजह से भारत 1962 के युद्ध में मात खाया था, संभवतः उसी तरह की भूल आज भी की जा रही है। पेंटागन की रिपोर्ट 2010 में साफतौर पर माना गया है कि चीन की युद्ध नीति और सैनिक सिद्धांत पूरी तरह से रहस्यपूर्ण हैं। पूरी दुनिया को विशेषकर भारत को नहीं मालूम की चीन का अगला कदम क्या होगा।

दरअसल 1962 के युद्ध के पहले भारत इस भ्रम में था कि चीन कभी भी भारत से युद्ध नहीं करेगा। इसी कूपमंडूकता के कारण भारत के पास न तो कोई सार्थक चीन नीति थी और न ही दक्षिण एशियाई नीति। आज जिस तरीके से चीन ने 1962 के युद्ध के पांच दशकों बाद पूरे दक्षिण एशिया में फैलकर भारत को घेरने की तैयारी कर ली है, वह चीन के विस्तारवाद और भारत की दृष्टिहीनता की वजह से ही हो पाया है। ब्रिटिश साम्राज्य की सोच दक्षिण एशिया और हिंद महासागर के

संदर्भ में एक समग्र रूप में थी। समुद्री मुहानों पर यह लाइन लाल सागर से मल्लका स्ट्रेट तक फैली थी। लेखक जान गार्वर ने यह माना है कि भारत को विरासत में एक ऐसा सामरिक ढाँचा मिला था, जिसे भारत के राजनेताओं ने आदर्शवाद के मोह में तोड़ दिया। कई रक्षा विशेषज्ञ यह मानते हैं कि अगर नेहरू में सामरिक सूझ-बूझ होती तो भारत न केवल 1962 का युद्ध जीत जाता, बल्कि 1962 के बाद बनी भारत के गले में सुरक्षा की हड्डी यानी कश्मीर समस्या भी नहीं होती। तिब्बत एक स्वतंत्र देश होता। भारत की सुरक्षा उत्तरी सीमा से पूरी तरह चाक-चौबंद होती। ब्रह्मपुत्र की धाराओं के साथ खिलवाड़ नहीं होता।

भारत द्वारा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ बेहतर संबंधों की कवायद शुरू कर चीन को यह संदेश देने की कोशिश की गई कि अगर चीन दक्षिण एशिया में भारत विरोध की लहर फैलाता है तो भारत भी चुप नहीं बैठा रह सकता।

तिब्बत आणविक प्रक्षेपास्त्रों का अड्डा नहीं बनता। भारत में नक्सलवाद की लपटें नहीं उठती, जो आज हमारे देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए अहम प्रश्न बन गया है।

पेंटागन और अन्य देशों की सुरक्षा रिपोर्टें इस बात की चेतावनी दे रही हैं कि चीन विदेशों में अपने सैनिक अड्डे बनाने की तैयारी में जुटा हुआ है। इसमें महत्त्वपूर्ण देश हैं बांग्लादेश, कंबोडिया, म्यंमार, पाकिस्तान और थाईलैंड। भारत के लिए चीन के ये सैनिक अड्डे कई मुश्किलें खड़ी करेंगे। चीन का सान्या नौसैनिक अड्डा एक भूमिगत नौसैनिक अड्डा है, जो आणविक पनडुब्बियों से लैस है। इसकी दूरी मल्लका स्ट्रेट से महज 1,200 नौटिकल मील है। पाकिस्तान के ग्वादार नौसैनिक अड्डा बन जाने से चीन भारतीय व्यापार को अरब सागर में जाने से रोक सकता है। कराची बंदरगाह के जरिए पाकिस्तान भारत पर अंकुश रखने की कोशिश कर सकता है।

हिमालय का सामरिक महत्त्व

इतिहास के पृष्ठ अगर आईने का काम करते हैं तो, यह स्थिति बखूबी दिखाई दे रही है कि हिमालय की सुरक्षा भारतीय अस्तित्व के साथ कैसे जुड़ी हुई है। भारत के भीतर जम्मू-कश्मीर का इलाका पाकिस्तानी घुसपैठियों से परेशान है। पाकिस्तान ने चीन के शह पर मिलकर भारत के साथ हजार वर्षीय युद्ध की बात कही थी। उस वक्तव्य का मंतव्य यही था कि आतंकवादी और घुसपैठियों के बल पर पाकिस्तान भारत की उत्तरी सीमा पर हरसंभव तंग हालात पैदा करता रहेगा। दूसरी तरफ पाक अधिकृत कश्मीर पूरी तरह से आंतकियों के चंगुल में है। पाक-अफगान की सीमा बेतरतीब, विखंडित और रक्तरंजित बनती जा रही है। तालिबान, नया तालिबान और इसलामिक

स्टेट के नए मुरीद आम लोगों को निशाना बना रहे हैं। इन आंतकियों की वजह से भारत का पूरा उत्तरी क्षेत्र प्रभावित होता है। चीन के मुसलिम बहुल राज्य झिजियांग में इसलामिक आतंकवाद का नया तेवर और चेहरा दिखाई देने लगा है। इन प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने के लिए चीन ने अफगानिस्तान को अपने ढंग से सँवारने की जिम्मेवारी ली है। चीन का अफगानिस्तान में एक सक्रिय भूमिका के रूप में आना भारत के लिए चिंता का विषय है। चीन अफगानिस्तान में पाकिस्तान के द्वारा निर्मित नीतियों पर काम करने की कोशिश करेगा। पाकिस्तान की सोच और नीति विकास की नहीं, बल्कि भारत विरोध की है। मध्य एशिया के राज्य भी इस समीकरण के शिकार होंगे। भारत की कई महत्त्वपूर्ण परियोजनाएँ या तो कमजोर पड़ जाएँगी या टूट जाएँगी।

हिमालय फ्रंटियर का ऐतिहासिक महत्त्व

हिमालय की पर्वत शृंखला अपने आप में प्रहरी का काम करती थी। मुगल काल तक हिमालय की सीमा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। मनोवैज्ञानिक रूप से यह समझ लिया गया कि कोई भी आक्रमण हिमालय की सीमाओं को लांघकर नहीं किया जा सकता। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के उपरांत उत्तरी सीमा की घेराबंदी शुरू हो गई, क्योंकि पूर्व सोवियत साम्राज्य अपना विस्तार तेजी से मध्य एशिया की ओर कर रहा था। चीन की हालत शुरुआत में अच्छी और मजबूत नहीं थी, उसके बावजूद चीन हर तरह से इस प्रयास में था कि हिमालय की शृंखलाओं पर उसकी मजबूत पैठ बन जाए। इस जद्दोजहद में पूर्व सोवियत संघ और ब्रिटिश साम्राज्य के बीच अफगानिस्तान एक 'बफर' स्टेट के रूप में आपसी समझौते के रूप में बनाया गया। दूसरी तरफ तिब्बत को भारत और चीन के बीच 'बफर' स्टेट का दर्जा दिया गया। पूर्वी सीमा पर म्यंमार को सामांनतर दर्जा दिया गया। ब्रिटिश साम्राज्य तिब्बत को लेकर काफी संजीदा था। पूर्व सोवियत संघ के आक्रामक रुख को ध्यान में रखते हुए ही तिब्बत में लार्ड-कर्जन ने एक टीम फ्रांसीस यंग हसबेंड के नेतृत्व में 1903 में भेजी। इस टीम के द्वारा ही 1903 में ही तिब्बत के साथ ल्हासा समझौता संपन्न हुआ। अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य ने तिब्बत की सुरक्षा की बीड़ा अपने कंधों पर ले लिया। उसके उपरांत ही ब्रिटिश साम्राज्य की विशेष रुचि हिमालय के देशों के प्रति उभरनी शुरू हो गई जिसमें तिब्बत, नेपाल और भूटान महत्त्वपूर्ण देश थे। ब्रिटिश प्रयास निरंतर हिमालय के देशों के साथ सहयोग बढ़ाने और राजनीतिक व्यवस्था में एक संतुलन बनाने का रहा है। क्योंकि उसी दौरान रूस की बोलशेविक साम्यवादी क्रांति ने ब्रिटिश साम्राज्य की नींद उड़ा दी थी। ब्रिटेन को यह डर गंभीर रूप से तंग करने लगा था कि सोवियत सेना रावलपिंडी के रास्ते बाबूसार मुहाने को लांघते हुए हिमालय के दक्षिणी भागों में दस्तक दे सकती है। गिलगिट मुहाने की अहमियत को देखते हुए ब्रिटिश साम्राज्य ने कश्मीर के साथ 1935 में एक समझौता किया। इस समझौते के अंतर्गत गिलगिट का उत्तरी हिस्सा जिसे वजरहट के नाम से जाना जाता है, 60 वर्षों के लिए ब्रिटिश साम्राज्य को एक अनुबंध के आधार पर सौंपा जाता है। अर्थात इस मसौदे के अनुसार नागरिक और सैनिक सुरक्षा की जिम्मेवारी भारत सरकार की होगी। ब्रिटिश शासन काल और स्वतंत्र भारत की सामरिक सोच में बुनियादी अंतर यही है कि ब्रिटेन ने गिलगिट, हुंजा और बलूचिस्तान क्षेत्रों में ऐसी घेराबंदी कर दी थी कि दुश्मन किसी भी तरह से चोंच भी न मार सके। लेकिन स्वतंत्र भारत ब्रिटिश काल में बनाए गए सुरक्षात्मक घेरे को अक्षुण नहीं रख पाया। भारत अपनी बिगड़ती और कमजोर सामरिक सोच के कारण महत्त्वपूर्ण ठिकानों को अपने प्रभाव क्षेत्र से खिसकते देखता रहा।

भारत की विदेश नीति में परिवर्तन का आभास

विभिन्न देशों के विश्लेषण के उपरांत हिमालय की विशेषता और सुरक्षा की दृष्टि से उसकी उपयोगिता की पुष्टि हो चुकी है। भारत की विदेश नीति और सोच में भी परिर्वितन आया है। एक मजबूत प्रधानमंत्री के रूप में मोदी ने हिमालय क्षेत्र में भारत की सुरक्षा को विशेष महत्त्व दिया है। यही कारण था कि प्रधानमंत्री बनने के उपरांत मोदी ने पहली यात्रा भूटान की की। इसके उपरांत वह नेपाल गए। ये दोनों यात्राएँ अपने आप में भारतीय विदेश नीति की गति और दिशा में बुनियादी परिर्वतन की पुष्टि करती हैं। भारत द्वारा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ बेहतर संबंधों की कवायद शुरू कर चीन को यह संदेश देने की कोशिश की गई कि अगर चीन दक्षिण एशिया में भारत विरोध की लहर फैलाता है तो भारत भी चुप नहीं बैठा रह सकता। उसके पास भी तीर-धनुष हैं। भारत भी चीन के लिए मुसीबत बन सकता है।

दरअसल, भारत की मजबूरी या लाचारगी यह है कि पिछले छह दशकों में हिमालय की सीमाओं में भारत की स्थिति निरंतर कमजोर होती चली गई। एक के बाद दूसरे बफर स्टेट टूटते गए। चीन ने पहले तिब्बत, फिर नेपाल और पाकिस्तान के रास्ते पूरी तरह से दक्षिण एशिया में अपना जाल फैला लिया। उसकी वजह से सुरक्षा का बुनियादी ढाँचा खतरे में पड़ गया। चीन न केवल भारत की बाह्य सुरक्षा को चुनौती दे रहा है, बल्कि आंतरिक सुरक्षा को भी हवा दे रहा है, चाहे वह मसला नक्सलवाद का हो या अलगाववाद। भारत विरोधी गतिविधियों में चीन की प्रत्यक्ष या परोक्ष भूमिका रहती है।

आज के अंतरराष्ट्रीय परिवेश में सुरक्षा के मायने भी बदल गए हैं। पहले सुरक्षा का अर्थ सीमा सुरक्षा से समझा जाता था, लेकिन बदलते हुए समय के साथ आतंरिक सुरक्षा और बाह्य सुरक्षा में कोई मूलभूत अंतर कर पाना मुश्किल है। भारतीय अंतरराष्ट्रीय सीमा पाक, चीन, म्यांमार, बांग्लादेश को छूती है, जहाँ आए दिन घुसपैठ की कोशिशें चलती रहती है। पाक से लगी सीमा पर गोलाबारी रोज की बात है। इसके अतिरिक्त भारत की समुद्री सीमा लगभग साढ़े सात हजार किलोमीटर तक फैली हुई है, जो सुरक्षा की चुनौतियों को और गंभीर बना देती है ।

चीन इस समय एशिया का सबसे शक्तिशाली देश है। चीन भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण पड़ोसी देश भी है। दोनों के बीच संदेह और तनाव की रेखाएँ अक्सर देखने को मिल जाती हैं। इसकी ठोस पृष्ठभूमि भी मौजूद रही है। अगर इतिहास में झांकें तो आप पाएँगे कि चीन और भारत ने बतौर स्वतंत्र राष्ट्र की सुनियोजित यात्रा क्रमशः 1949 और 1947 में शुरू की। गौरतलब है कि दोनों देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएँ अलग थीं। बावजूद इसके दोनों देशों ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध और एशियाई भावना को मजबूत बनाने के लिए कदम से कदम मिलाकर चलने की वचनबद्धता दिखाई। लेकिन बदलते समीकरणों के कारण 50 के दशक के अंत में दोनों के संबंधों में कटुता आने लगी। विवाद के दो मुद्दे थे। तिब्बत की समस्या और 2500 मील की सीमा का सीमांकन न होना। दूसरा महत्त्वपूर्ण मुद्दा पाक-चीन गठबंधन, जो भारत विरोध के लिए बनाया गया है। 1968 में चीन ने पाकिस्तान से विशेष संबंध स्थापित किए। पाक और चीन की सीमा कहीं पर नहीं मिलती। इसके बावजूद चीन ने कश्मीर को एक विवादास्पद क्षेत्र घोषित कर दिया। पाकिस्तान ने अनधिकृत रूप से हथियाए गए कश्मीर के काराकोरम क्षेत्र का 1,500 मील क्षेत्र चीन को दे दिया। इसके

इसके पीछे कारण है कि हमारे यहाँ एक महत्त्वपूर्ण सामरिक संस्कृति की कमी रही। वाजपेयी के काल में चीन को दुश्मन की बात कहकर भारत ने एक शुरुआत जरूर की। आणविक विस्फोट ने सामरिक संस्कृति को और बल दिया। लेकिन कांग्रेस की सरकार ने भारत की सामरिक संस्कृति को विकसित होने का मौका ही नहीं दिया। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अपने 10 वर्ष के कार्यकाल के अंतिम दिनों में सामरिक संस्कृति का प्रश्न उठाया था। परंतु वह प्रश्न भी अपने आप में अनिश्चयात्मक था।

एवज में चीन ने 750 मील के क्षेत्र एम के-2 में प्रवेश का अधिकार पाकिस्तान को दे दिया। चीन के द्वारा बनाए गए काराकोरम मार्ग ने, जो पाक अधिकृत कश्मीर से होकर गुजरता है, पाकिस्तान और चीन के बीच आवागमन को बहुत आसान बना दिया। यह आज भी भारत की सुरक्षा के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। पाकिस्तान हर तरीके से भारत के साथ अघोषित युद्ध की भूमिका में है और चीन पाकिस्तान की पीठ थपथपाता रहता है। इसके पीछे कारण है कि हमारे यहाँ एक महत्त्वपूर्ण सामरिक संस्कृति की कमी रही। वाजपेयी के काल में चीन को दुश्मन की बात कहकर भारत ने एक शुरुआत जरूर की। आणविक विस्फोट ने सामरिक संस्कृति को और बल दिया। लेकिन कांग्रेस की सरकार ने भारत की सामरिक संस्कृति को विकसित होने का मौका ही नहीं दिया। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अपने 10 वर्ष के कार्यकाल के अंतिम दिनों में सामरिक संस्कृति का प्रश्न उठाया था। परंतु वह प्रश्न भी अपने आप में अनिश्चयात्मक था।

दरअसल सामरिक संस्कृति और सामरिक रणनीति में बुनियादी अंतर होता है। सामरिक रणनीति प्रशासनिक ढांचे का अंग होती है, जिसके तहत दुनिया के दूसरे देशों से बेहतर संबंध बनाने की कोशिश की जाती है, जबकि सामरिक संस्कृति कई वर्षों की सोच का नतीजा होती है, जिसमें राष्ट्रीय संप्रभुता का निरंतर विकास, सीमाओं की सुरक्षा, सैनिक व्यवस्था की मजबूत नींव और आर्थिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का विस्तार जैसे कारक शामिल होते हैं। अगर भारतीय सामरिक संस्कृति को समझना हो तो थोड़ा अतीत में जाना समीचीन होगा। नेहरू ने सैनिक शक्ति के प्रयोग की बात हर तरह से नकार दी थी और यह माना था कि इसका उपयोग तभी किया जाएगा, जब कोई भी उपाय न बचा हो। उनकी इस सोच का खामियाजा भारत को चीन के साथ युद्ध में भुगतना पड़ा। अरुण शौरी ने अपनी पुस्तक में भारत की हार के लिए नेहरू की सोच और नेतृत्व को दोषी माना है।

उल्लेखनीय है कि पहले पोखरण विस्फोट के बाद कांग्रेस की सरकार ने करीब चार बार आणविक विस्फोट की योजना बनाई थी, मगर कामयाबी हासिल नहीं हो पाई। दरअसल आजादी के बाद पहली बार भारत को विश्व शक्ति का सम्मान तब मिला जब वाजपेयी सरकार के समय दूसरा परमाणु विस्फोट किया गया। तब तक भारत की विदेश और सुरक्षा नीति पाकिस्तान के इर्द-गिर्द मंडराती रही, लेकिन वाजपेयी सरकार के कार्यकाल के दौरान वैश्विक सोच में बदलाव आया और भारत को विश्व जगत में गंभीरता से लिया जाने लगा। लेकिन पुनः मनमोहन सिंह की सरकार ने उभरती हुई सामरिक सांस्कृतिक सोच पर लीपापोती शुरू कर दी। इसे समझने के लिए तीन उदाहरण काफी हैं। पहला, मनमोहन सिंह की विदेशनीति उनकी आर्थिक कूटनीति का अंग मानी जाती है, मगर पिछले 10 वर्षों में भारत की पहुँच पूर्व

और दक्षिण पूर्व एशिया से दूर फिसलती चली गई। भारत की लुक ईस्टन नीति भी उलझनों में फँसी रही। मध्य एशिया में चीन का दबदबा निरंतर बढ़ता रहा। भारत अफगानिस्तान में भी हताश होता रहा। भूटान और नेपाल भी भारत से अपने हाथ खींचने लगे। ऐसे हालात में आर्थिक कूटनीति भी पूरी तरह से पिटती चली गई। दूसरा, वर्षों से हिंद महासागर में चीन की शक्ति को तेजी से बढ़ने का मौका दिया जाता रहा। तीसरा, कांग्रेस की सरकार विश्व व्यवस्था में हो रहे बदलाव को अपने पक्ष में लाने में भी फिसड्डी रही। देश के पहले प्रधानमंत्री नेहरू जी की नीति संयुक्त राष्ट्र द्वारा संचालित ढाँचे पर टिकी थी। इसके बावजूद भी संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता पाने की भारत की मांग को नहीं माना गया।

वर्तमान प्रधानमंत्री कांग्रेस संस्कृति दृष्टि दोष को बदलने की कोशिश में दिख रहे हैं। किसी भी लोकतांत्रिक देश में नीतियों में आमूल चूल परिर्वतन रातों-रात नहीं होता। जिस तरीके से भारत की विदेशनीति प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नक्शे कदम पर खींची जा रही है, वह एक मजबूत राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के लिए जरूरी है। सच बात तो यह है कि सामरिक संस्कृति एक दिन या एक-दो वर्ष में बन नहीं सकती। इसके लिए उपयुक्त समय चाहिए। लेकिन वर्तमान सरकार की नजर में हिमालय की सीमाएँ और उसके विभिन्न अंचलों में बसे हुए देशों के बीच भारत की मजबूत स्थिति बनाना, ही प्राथमिकता है। चीन को जवाब देने का एकमात्र यही पथ भी है। भारत अपनी गोटी फेंक रहा और चीन अपनी। निशाना दोनों का हिमालय का फ्रंटियर ही है।

लेखक झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, राँची में अंतरराष्ट्रीय संबंध विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हैं।

संदर्भ

1. के सुब्रमन्यम, चीन से सावधानी की जरूरत, 23 सितंबर टाइम्स ऑफ इंडिया
2. चीन से उत्पन्न संकट, तहलका, 1 नवंबर 2010
3. नेहा कुमार, चीन से आणिवक बमों का खतरा, इंडिया क्वार्टरली, 65, (2009) 37-53
4. नग्वांग ग्यारत सेन, ग्रीन तिब्बत, रिपोर्ट, सेंट्रल तिब्बत प्रशासन, 1996
5. गागचेन क्वीसोग, तिब्बत को शांति क्षेत्र बनाने की पहल, सेंट्रल तिब्बतन प्रशासन, 1998
6. स्वर्ण सिंह, चीन और दक्षिण कोरिया, लासर बुक - 2003, पृ. 83-93
7. अटल बिहारी वाजपेयी- चार दशक संसद में, खंड-तीन, सिप्रा-998
8. जॉन अर्कले, चीन के आणिवक बम, तिब्बत रिपोर्ट, 1993
9. ब्रह्म चेलानी, चीन से खतरा, हिंदुस्तान टाइम्स, 15 अक्तूबर, 2010
10. जेन्स डिफेंस, विकली रिपोर्ट चीन की सैन्य शक्ति, मई 2010
11. गुरमीत कनवल, चीन की महाशक्ति बनना, स्ट्रैटिजिक एनालिसिस, वॉल्यूम 22, 1999
12. मारूफरजा, चीन से दो-दो हाथ, 28 अक्तूबर, 2010
13. छाना नोरबू, भारत और चीन के बीच तिब्बत, 18 सितंबर, 1999
14. श्रीपरना पाठक, चीन, पाकिस्तान और भारत, असम ट्रिब्यून, सितंबर 2010
15. बी रमन, चीन की शक्ति से भय, 6 अक्तूबर, 2010, पायोनियर
16. झिनुआ समाचार, ब्यूरो की रिपोर्ट, 10 दिसंबर, 2008
17. बी.बी.सी. की रिपोर्ट, 15 अक्तूबर, 2007
18. जनरल एस. के. सिन्हा, चीन को रोकने की जरूरत, एशियन एज. 24 नवंबर 2010
19. अशोक देसाई, एक खतरनाक महाशक्ति, द टेलिग्राफ 14 दिसंबर, 2010
20. राहुल सिंह, चीन की सैन्य शक्ति को रोकना होगा, टाइम्स ऑफ इंडिया, 29 नवंबर, 2010
21. सुधींद्र कुलकर्णी, चीन से खतरा, इंडियन एक्सप्रेस, 12 दिसंबर, 2010
22. बी रमन, तिब्बत पर चीन की निगाहें, साउथ एशियन एनालिसिस पेपर, 2381, 2007
23. तिब्बत केंद्र की रिपोर्ट, चीन की विस्तारवादी नीति पर, 2007

बजट भाषण के बाद देश में जो अच्छी बात है वह यह है कि कुछ प्रारम्भिक नकारात्मक झटकों के बाद राष्ट्र ने इस विचार को अच्छी प्रकार से स्वीकार किया है। वाणिज्य और उद्योग जगत को उनके इस विचार के प्रति दृढ़ परिपक्वता एवं पूर्ण आस्था के साथ इसको स्वीकार करने के उपलक्ष्य में उचित श्रेय देना अति आवश्यक है, किसी भी प्रकार का असंतोष का भाव प्रत्यक्ष रूप से अनुपस्थित है, अलगाव के विचार काफी हद तक हल्के हुए हैं। शायद पहली बार, एक बड़ी सोच राष्ट्र को अपने आप से आगे प्रस्तुत कर रही है।

बजट 2016

नए भारत की आशा का अग्रदूत

तिलक चांदना

प्रत्येक बजट भाषण के उपरांत विचारकों का एक बड़ा भाग इसके मूल सार की व्याख्या करने में जुट जाता है। इस प्रक्रिया में बहुयामी दृष्टिकोण रखे जाते हैं जिनमें अधिकांशः दृष्टिकोण बौद्धिक एवं वैचारिक झुकाव पर निर्भर होते हैं। परंतु प्रजातंत्र की अच्छाई इसमें इतनी व्याप्त होती है कि एक सशक्त प्रजातंत्र इन भिन्न-भिन्न स्वरों व कर्कश ध्वनियों, जो पूर्ण रूप शुद्ध न भी हों, का मंथन कर शुद्ध सत्य विचार को प्रतिपादित कर देता है। बेशक, बजट 2016 का मुख्य बिंदु कृषि व ग्राम अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता की तरफ अग्रसर करना है। बजट अभिभाषण यह भाव सर्वविदित एवं सर्वलक्षित है।

फ्रांस के एक कवि और उपन्यासकार विक्टर ह्युगो ने एक बार कहा कि 'विश्व की समस्त शक्तियाँ इतनी शक्तिशाली नहीं होतीं जितना कि एक विचार जो तत्कालीन समय की मांग है'। कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को दृढ़ता प्रदान करने का यह विचार उतना शक्तिशाली है या नहीं (उत्साही एवं सुखप्रदाताओं के सुखबोध के सृजन के बावजूद भी) इसके बारे में कोई निष्कर्ष लेना जल्दबाजी होगी।

कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था को दृढ़ता मिले ऐसी अपेक्षा व आकांक्षा तीव्र भी थी और सही भी। यदि बजट 2016 इस संवेदना के प्रति विमुख दिखता तो यह शासन व्यवस्था की पूर्ण संवेदनहीनता को ही प्रतिलक्षित करता। कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्याप्त पीड़ा इतनी पैनी व दुखद है कि बजट अभिभाषण में इस विचार की अनदेखी

भयावह होती। इस पीड़ा को प्रथम रूप से सुलझाए बिना आगे किसी भी प्रकार की यात्रा दुष्परिणामों से युक्त है, इन परिणामों के सोच मात्र से ही कोई संवेदनशील प्राणी थरथराए बिना नहीं रहेगा।

बजट अभिभाषण में इस पहल को दिशात्मक एवं दूरदृष्टि वाला कहा जा सकता है, परंतु केवल मात्र पहले सही कदम के रूप में, बजट में इस मद्द के लिए वर्द्धित व्यय प्रावधान करना स्वयं में एक अंतिम लक्ष्य नहीं है और न ही अपने आप में पूर्ण। यह तथ्य स्मरण रहे एवं कोई भी गलती न हो। विडंबना है कि अतीत में इस दिशा में जितनी अधिक नारेबाजी, दिखावा एवं प्रावधान किए गए, कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था में समस्याओं का उतना ही अधिक बोझ बढ़ता गया। अब तक कृषि एवं ग्रामीण व्यवस्था पर जो चिंतन रहा है, अर्थव्यस्था एक प्रकार से ढोल पीटना, पीठ थपथपाना व बातें बनाने का शिकार रहा है। यदि इस बार भी इतिहास अपने को दोहराता है तो ऐसा पुनर्निष्पादन बहुत बड़ा जोखिम होगा। वास्तविकता के धरातल पर उपर्युक्त कार्य अभी आरंभ होना बाकी है। विकल्पों का उज्ज्वल पक्ष प्रवेश कर चुका है और यथार्थ पक्ष को आगे अपनाना होगा। सावधानी रखने हेतु यहाँ दो या तीन चुनौतियों पर विशेष बल देना अनिवार्य है। अति असाध्य कार्य हेतु सूक्ष्म क्रियान्वयन अनिवार्य है। इस कारण यह कार्य भी कोई अपवाद नहीं है। हमारे सामने दो विशालकाय चुनौतियाँ हैं। प्रथम है व्यय क्षमता तथा दूसरे व्यय का उचित रूप। हमारे देश में इन दोनों तथ्यों का जो रिकार्ड रहा है वह अव्यवस्थित ही रहा है। कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए प्रदत राशि के बड़े भाग का व्यय निष्पादन राज्यों को करना होता है। राज्यों की व्यय प्रणाली व व्यवस्था अत्यधिक लचर है एवं मूलभूत सुधार मांगती है।

यह कोई बड़ा रहस्य नहीं है कि हमारे देश का व्यय तंत्र पुरातन, अपूर्ण, अक्षम, भ्रमित और राजनीतिक पक्षपातपूर्ण है। राज्यों में शासन व्यवस्था व्यय प्रावधान का समयानुसार उचित उपयोग करने में शोचनीय रूप में कमजोर रही है। वहीं शासन व्यवस्था बढ़े हुए व्यय-प्रावधानों को ठीक से व्यय कर पाएगी ऐसी आशा करना, ऐसा लगता है जैसे चंद्रमा को धरती पर उतारना।

एक राष्ट्र के नाते हमारी व्यय क्षमता तथा उचित व्यय विधि संबंधित मंत्रालयों की व्यय विधि की संपूर्ण संरचना को कुछ उचित संशोधनों से गुजरना पड़ेगा। अपने देश की शासन व्यवस्था में एक संघीय ढांचा होने के कारण इस कार्य को और भी अधिक कठिन बना देता है। केंद्र द्वारा निर्मित ऐसा कोई भी सुधार जो समरूप से सभी राज्यों में कारगर हो इसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि समस्त संशोधन एक ही आकार में ठीक नहीं बैठते हैं। कहा जाता है कि क्षमता निर्माण एक प्रक्रिया है, परिणाम नहीं। क्षमता निर्माण एक लम्बी प्रक्रिया है इसको जल्दबाजी से प्राप्त करना अति कठिन है।

इन समस्त बातों में एक आशा की झलक हमें दिखाई देती है। हमारे प्रतियोगी एवं सहयोगी संघीय ढांचे की अवधारणा यद्यपि धीरे ही सही परंतु निश्चित रूप से राज्यों में घर कर रही है। नव आकांक्षाओं से परिपूर्ण

अब तक कृषि-ग्रामीण व्यवस्था पर जो चिंतन रहा है, वह एक प्रकार से ढोल पीटना, पीठ थपथपाना व बातें बनाने का शिकार रहा है। यदि इस बार भी इतिहास अपने को दोहराता है तो यह बहुत बड़ा जोखिम होगा। वास्तविकता के धरातल पर कार्य अभी आरंभ होना बाकी है।

भारत केवल व केवल मात्र सुशासन प्रेरित कल्याण कार्य ही केंद्र व राज्यों में सत्तासीन होने अथवा पुनर्स्थापित होने का मापदंड है।

यह उत्साहवर्धक विषय है कि कोई दल सत्तापक्ष में है या विपक्ष में आम जनता की आकांक्षाओं को पूर्ण करने हेतु उसे प्रभावी संचालन एवं सुनियोजित वितरण ढाँचे का प्रयोग करना होगा। राज्यों में व्यय क्षमता बढ़े इस बात को प्राथमिकता देनी होगी ताकि वह परिणामों में परिवर्तित हो सकें।

व्यय क्षमता व उचित व्यय विधि की क्षमता के सृजन हेतु निम्नलिखित तथ्यों पर पूर्ण रूपेण पुनर्विचार की आवश्यकता है।

1) **प्रक्रिया**
2) **मानव संसाधन**
3) **योजना**
4) **प्रविधि**
5) **अधिप्राप्ति**
6) **योजनाएँ**
7) **शासन व्यवस्था**
8) **पंचायत**
9) **प्रतिमान**

परिवर्तन की इस प्रक्रिया में तकनीकी का प्रयोग सबसे बड़ा सहायक होगा। सुनिश्चित करना होगा कि तकनीक चहुँ ओर नव संरचना के निर्माण में अहम भूमिका निभाए।

बजट भाषण के बाद देश में जो अच्छी बात है वह यह है कि कुछ प्रारम्भिक नकारात्मक झटकों के बाद राष्ट्र ने इस विचार को अच्छी प्रकार से स्वीकार किया है। वाणिज्य और उद्योग जगत को उनके इस विचार के प्रति दृढ़ परिपक्वता एवं पूर्ण आस्था के साथ इसको स्वीकार करने के उपलक्ष्य में उचित श्रेय देना अति आवश्यक है, किसी भी प्रकार का असंतोष का भाव

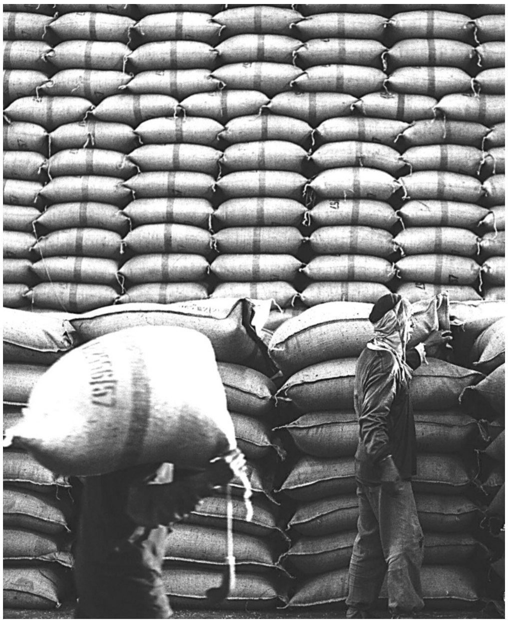

प्रत्यक्ष रूप से अनुपस्थित है, अलगाव के विचार काफी हद तक हल्के हुए हैं। शायद पहली बार, एक बड़ी सोच राष्ट्र को अपने आप से आगे प्रस्तुत कर रही है।

'वह क्या विचार है जो समय की मांग है' और जिसका राष्ट्र बड़ी बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा है? कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास यदि होता है तो इसकी लक्ष्यपूर्ति व भारत के निर्माण में अहम भूमिका अदा करेगी। 'साधन सम्पन्न भारत' 'साधन अपेक्षित भारत' की खाई पटेगी व नए सशक्त व सबल एवं एकरुपेण भारत का निर्माण होगा।

दो खंडों में बंटे देश का विचार अब अस्वीकार्य है। इस पुरातन सोच में नव सूर्य को उदय होना है। नए भारत के निर्माण का विचार क्षितिज पर स्थित है। आओ इसका स्वागत करें। हम भी इस नवोदय के उत्प्रेरक बनें।

** लेखक आर्थिक विषयों के प्रसिद्ध चिंतक हैं।*

बवासीर कारण और निवारण

स्वस्थ शरीर किसी भी व्यक्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण संपत्ति है। यदि व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो वह कोई भी कार्य ठीक से नहीं कर पाता। हमारे रहन-सहन और हमारी दिनचर्या से हमारा स्वास्थ्य प्रभावित होता है। बहुत से रोग ऐसे हैं जिनसे अपने रहन-सहन में बदलाव करके बचा जा सकता है। बवासीर भी एक ऐसा ही रोग है। यह बहुत ही आम समस्या है। प्रस्तुत लेख में बहुत सरल भाषा में यह बताने का प्रयास किया गया है कि- इस समस्या से कैसे मुक्त रहा जा सकता है।

डॉ. ज्योत्स्ना

मलद्वार के आस पास शिराओं में सूजन हो जाने को बवासीर कहते हैं। ये दो तरह के होते हैं। बाह्य और आंतरिक। बाह्य को रोगी छू पाता है, महसूस कर पाता है जबकि आंतरिक वैसे नहीं दिखाई देते केवल तब छू सकता है जब बहुत ज्यादा फूल कर बाहर आ जाते हैं। ये हाथ से पुनः दबाने पर अंदर चले जाते हैं अंदर जाने पर बहुत दर्द करते हैं।

क्यों हो जाती है बवासीर

यह बहुत आम समस्या है। ज्यादातर वृद्धों में और स्त्रियों में गर्भावस्था के दौरान हो जाते हैं।

किसी कारण से जब पेट में दबाब बढ़ा हो जैसे कब्ज (सबसे प्रमुख कारण), जिससे जोर लगाना पड़ता है। (अन्य कारण जिनमें भी जोर लगाना पड़ता है जैसे छींकने, खाँसने, वहीं साँस रोककर पेट में जोर लगाना पड़ता है तब इसकी संभावना रहती है। ऐसी अवस्था जिसमें रक्त हृदय की ओर आराम से नहीं जा पता है जैसे गर्भावस्था से भ्रूण के दबाव से या लम्बे समय तक बैठे रहने और खड़े रहने वाले व्यवसायों में रक्त नहीं लौट पाता है। मल त्याग की गलत आदत भी इनका कारण होती है।

लक्षण

■मलद्वार पर जलन, खुजली, दर्द, सूजन।

■मस्से महसूस होते हैं (बाह्य)।

■मलत्याग के समय अत्यधिक दर्द होता है।

■मल के साथ खून या मल बाद तक टपकता है।

कैसे तय करे कि अर्श है ?

रोगी हाथ से बाह्य मस्से महसूस कर सकता है अन्यथा चिकित्सक निर्धारण करेगा।

बवासीर (अर्श) न हो इसके लिए क्या सावधानियाँ बरतें

बवासीर से बचाव की दृष्टि से भोजन बहुत महत्त्वपूर्ण है। भोजन ऐसा होना चाहिए जिससे कब्ज ना हो। दिन भर में पानी या तरल कम से कम 8-10 गिलास पीना चाहिए। भोजन रेशेदार हो, मैदा आदि का प्रयोग ना करें। यदि आपका काम ऐसा है जिसमें लंबे समय तक बैठना पड़ता है तो थोड़ी-थोड़ी देर में खड़े हों या थोड़ा चल लें। भोजन में ऐसी चीजें लें जिनसे मल की मात्रा बढ़ती हो और वह नरम होता हो। तला-भुना और तेज मिर्च मसालों वाला खाना ना खाएँ। नमक कम लें।

यदि बवासीर हो जाए तो क्या सावधानी बरतें

■जैसा कि पहले भी बताया गया है कि लंबे समय तक न बैठें, यदि बैठना ही पड़े तो एक गोल गद्दी जिसमें बीच में छेद हो उस पर बैठें। आजकल बाजार में रबर की गद्दी भी मिलती हैं।

■कब्ज ना हो इसके लिए भोजन ऐसा रखें कि कब्ज ना हो यदि हो जाए तो चिकित्सा लें ।

■रोज नहाएँ और विशेष रूप से मलद्वार के आस-पास सफाई का ध्यान रखें। मल त्याग के बाद रात को सोने से पहले गर्म पानी के टब में बैठें और दवाई सिद्ध तेल लगाएँ।

■ऐसा कोई काम ना करें जिसमें साँस रोककर जोर लगाना पड़ता है।

नुस्खे-

■हरड़ का चूर्ण या काले हरड़ का चूर्ण और गुड़ बराबर मात्रा में लें।

■40-50 ग्राम तिल ठंडे पानी से सुबह खाएँ। इससे पाचन भी ठीक रहता हैं और अर्श में भी लाभ होता है।

■नीम की निंबोली की गिरियों को एक मूली को चीर कर उसमें रख दें, फिर ढक कर अच्छी तरह पका

कर और पीसकर सुखा कर गोलियाँ बना लें। 2-2 गोली दिन में तीन बार लें।

■सूखी मूली की पोटली की सिकाई से मस्सों में दर्द व सूजन दूर होती है।

■सूखी मूली, बेल गिरी, कुलथी की दाल का सूप पीएँ।

■अपामार्ग (चिरचिटा) का पंचाग पीसकर छाछ के साथ लेने से खूनी बवासीर में (रक्तार्श) में आराम मिलता है।

■जिमीकंद को काटकर सूखाकर चूर्ण कर लें और एक चम्मच सुबह खाली पेट एक माह तक लें।

■शतावरी की जड़ पेस्ट बना कर दूध से लें।

■नीम की गिरी, बकायन (महानीम) की गिरी में मुन्नका और छोटी हरड़ बराबर-बराबर मिलाकर और आधी घी में भुनी हींग मिलाएँ। 1-1 ग्राम दूध से लेने से दर्द व रक्त स्राव में आराम मिलता है।

■यदि खून आ रहा हो तो आँवला चूर्ण दही की मलाई के साथ लें।

■अमलतास का गूदा, मुन्नका हरड़ को 16 गुना पानी में उबालें फिर इसमें से 30 से 50 मिलीलीटर सुबह-शाम लेने से आराम मिलता है।

■बथुए के साग का सुबह-शाम सेवन करें।

■सहजन की दाल के काढ़े से सिकाई करें।

■सूखा जिमीकंद, बकायन की निंबोली की गिरी, हरड़ और रसौत मिलाकर लें।

■फिटकरी के फूले को केले के बीच लगाकर लें।

■गिलोय का स्वरस या चूर्ण छाछ से लें।

■आम की सूखी गुठली का चूर्ण भी छाछ से देने पर लाभ करता है।

हरड़ (हरीतकी)

हरड़ से प्रायः सभी परिचित हैं। इसका एक नाम विजया भी है यानी जो सभी रोगों पर विजय प्राप्त करे। आयुर्वेद में इसका महत्त्व बताया गया है कि यह छोटे-छोटे बच्चों में भी प्रयुक्त की जा सकती है। कहा गया है कि 'यस्य माता गृहे नास्ति, तस्य माता हरीतकी' यानि जिसकी माँ न हो हरीतकी उसकी माँ हैं। अर्थात् हरड़ माँ समान रक्षा करती हैं। इतना ही नहीं यह भी कहा गया है कि माता कुमाता हो सकती है लेकिन हरीतकी का यदि प्रयोग हुआ है तो वह केवल लाभ ही करेगी।

हरड़ के गुण

■अपचयन में उत्तम है।

■हरड़ के काढ़े में गुड़ मिलाकर लेने से पुरानी कब्ज भी दूर होती है।

■हरड़ का चूर्ण अर्श (बवासीर) कब्ज दूर करता है और मस्सों को सूखने में मदद करता है और रक्त गिरता हो तो सोखता है।

■हरड़ को मट्ठे के साथ लेने से भी आराम मिलता है।

किसी कारण से जब पेट में दबाब बढ़ा हो जैसे कब्ज (सबसे प्रमुख कारण), जिससे जोर लगाना पड़ता है। (अन्य कारण जिनमें भी जोर लगाना पड़ता है जैसे छींकने, खाँसने, वही साँस रोककर पेट में जोर लगाना पड़ता है तब इसकी संभावना रहती है। ऐसी अवस्था जिसमें रक्त हृदय की ओर आराम से नहीं जा पता है जैसे गर्भावस्था से भ्रूण के दबाव से या लम्बे समय तक बैठे रहने और खड़े रहने वाले व्यवसायों में रक्त नहीं लौट पाता है। मल त्याग की गलत आदत भी इनका कारण होती है।

■हरड़ कब्ज को दूर करती है लेकिन यदि पतले दस्त या पेचिश हो तो हरड़ को थोड़ी सोंठ, घी व शक्कर मिलाकर देने से आँतों में बैचेनी नहीं रहती है।

■हरड़ और बहेडा खाँसी में शहद के साथ दें।

■तंबाकू के व्यसनी जिनकी पाचन क्रिया मंद हो जाती है उनके लिए हरड़ के चूर्ण का सेवन उपयोगी है।

■यदि भूख न लगती हो तो हरड़ के चूर्ण को सोंठ, गुड़ व सेंधा नमक मिलाकर दें। यह पेट दर्द में भी आराम करती है।

■दाँत, मुँह, नाक या मलद्वार से रक्तस्राव होने पर वासा के क्वाथ के साथ दें।

■शरीर में मेदा वृद्धि में हरड़ को चबाकर लें।

■हरड़ घाव भरने में अच्छा काम करती है। इसके काढ़े से घाव को धोया जाए तो घाव जल्दी भरते हैं। यह सूजन भी कम करती है।

■पुराने घावों को भरने में मदद करती है। इसकी पेस्ट को घी में मिलाकर लगाने से घाव जल्दी भरते हैं।

■मुँह के छालों में इसके काढ़े के गरारे मदद करते हैं।

■यकृत वृद्धि में उपयोग करने से यकृत के कार्य को ठीक करती हैं। कोलेस्ट्रोल कम करने में भी मदद करती है। इसको गोमूत्र के साथ लेना चाहिए।

■हरड़ सूजन कम करने वाली होने से यह स्त्रियों में प्रदर रोगों में भी लाभ करती है।

■आयुर्वेद के अनुसार यह वात, पित्त और कफ तीनों को स्थिर करती है।

■वातिक रोगों में नमक के साथ, पैत्तिक में शर्करा के साथ और कफज रोगों में शुष्ठी (सोंठ) के साथ लें।

■अम्ल पित्त में हरड़ को मुन्नका के साथ लेने से यह ठीक होता है।

■बहुत पसीना आता हो तो हरड़ के चूर्ण को मलकर फिर स्नान करें।

■आमवात में इसका चूर्ण गिलोय के साथ लेने से दर्द और सूजन कम होती हैं।

शास्त्रों में इसका वर्णन इस प्रकार है-

खाने के तरीके के अनुसार

■चबा-चबा कर खाने से भूख बढ़ती है।

■पीस कर खाने से मल शुद्ध करती है।

■उबालकर खाने से दस्त बंद करती है।

■गाय के घी में भून कर खाने से तीनों दोषों का शमन होता है अर्थात सभी रोगों में लाभ होता है।

** लेखिका आयुर्वेद की वरिष्ठ चिकित्सक हैं।*

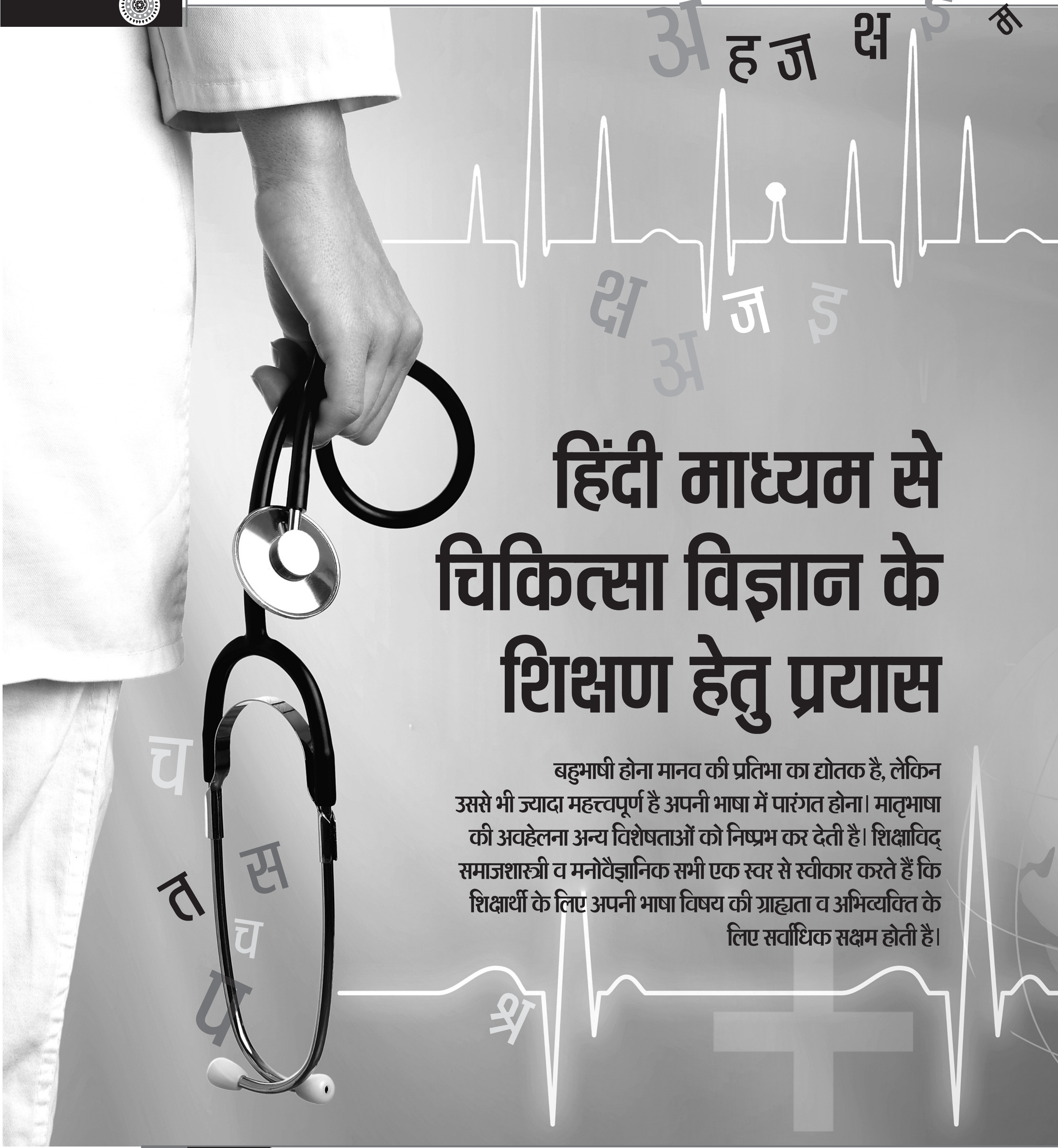

हिंदी माध्यम से चिकित्सा विज्ञान के शिक्षण हेतु प्रयास

बहुभाषी होना मानव की प्रतिभा का द्योतक है, लेकिन उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है अपनी भाषा में पारंगत होना। मातृभाषा की अवहेलना अन्य विशेषताओं को निष्प्रभ कर देती है। शिक्षाविद् समाजशास्त्री व मनोवैज्ञानिक सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि शिक्षार्थी के लिए अपनी भाषा विषय की ग्राह्यता व अभिव्यक्ति के लिए सर्वाधिक सक्षम होती है।

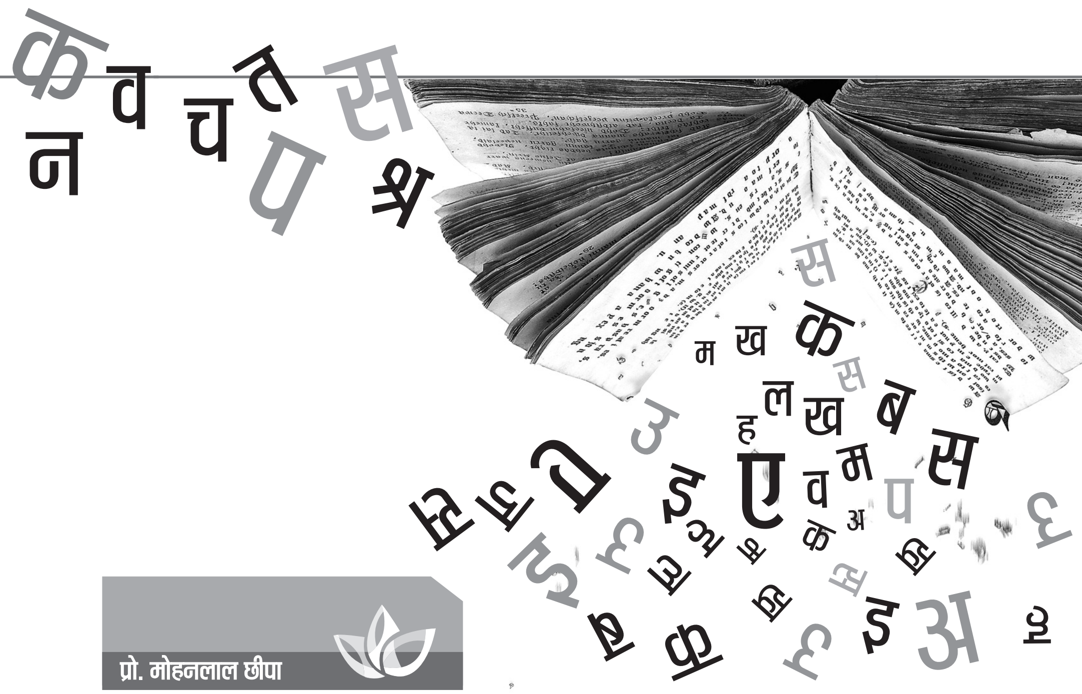

प्रो. मोहनलाल छीपा

भाषा केवल संवाद की ही नहीं, अपितु संस्कृति एवं संस्कारों की भी संवाहिका है। भारत एक बहुभाषी देश है। सभी भारतीय भाषाएँ समान रूप से हमारी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक अस्मिता की अभिव्यक्ति करती हैं। यद्यपि बहुभाषी होना एक गुण है, किंतु मातृभाषा में शिक्षण वैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तित्त्व विकास के लिए आवश्यक है। मातृभाषा में शिक्षित विद्यार्थी दूसरी भाषाओं को भी सहज रूप से ग्रहण कर सकता है। किसी देश में शिक्षण, किसी विदेशी भाषा में करने पर जहाँ व्यक्ति अपने परिवेश, परंपरा, संस्कृति व जीवनमूल्यों से कट जाता है, वहीं पूर्वजों से प्राप्त होने वाले पारंपरिक ज्ञान, शास्त्र, साहित्य आदि से अनभिज्ञ रहकर अपनी पहचान खो देता है। भारत के संदर्भ में भी यह बात चिंतत्य है, क्योंकि यहाँ उच्च शिक्षा, विशेषतया चिकित्सा व अभियांत्रिकी आदि की शिक्षा का माध्यम एक विदेशी भाषा है।

महामना मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ ठाकुर, श्री माँ, डॉ. भीमराव अंबेडकर, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे मूर्धन्य चिंतकों से लेकर चंद्रशेखर वेंकटरमन, प्रफुल्लचंद्र राय, जगदीशचंद्र बसु जैसे वैज्ञानिकों, कई प्रमुख शिक्षाविदों तथा मनोवैज्ञानिकों ने मातृभाषा में शिक्षण को ही नैसर्गिक एवं वैज्ञानिक बताया है। समय-समय पर गठित शिक्षा आयोगों तथा राधाकृष्णन आयोग, कोठारी आयोग आदि ने भी मातृभाषा में ही शिक्षा देने की अनुशंसा की है। मातृभाषा के महत्त्व को समझते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी समस्त विश्व में 21 फरवरी को मातृभाषा दिवस के रूप में मनाने का निर्णय किया है। परंतु स्वतंत्रता के 68 वर्षों के बाद और संविधान में हिंदी राजभाषा घोषित होने के बावजूद, हम चिकित्सा विषयों की शिक्षा हिंदी में प्रारंभ नहीं कर सके। भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्-एम.सी.आई. (1934), भारतीय उपचर्या परिषद्-आई.एन.सी. (1941) तथा भारतीय भेषज परिषद्-पी.सी.आई. (1948) जिन पर एलौपेथी चिकित्सा शिक्षा का दायित्व है तथा जो द्विभाषी कार्य के लिए अधिकृत हैं, अभी तक हिंदी भाषा में चिकित्सा शिक्षण का कार्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 1989-2000 के बीच 'एम्स' से स्नातक स्तर की शिक्षा ग्रहण किए चिकित्सकों में से 54 प्रतिशत भारत से बाहर हैं तथा जिनमें 85 प्रतिशत अमेरिका में बताए जाते हैं। अन्य चिकित्सा विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों से भी काफी संख्या में चिकित्सक भारत से शिक्षा ग्रहण कर अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि देशों में जा रहे हैं तथा भारत की ग्रामीण जनता उनकी सेवाओं से वंचित है।

प्रारंभ तक नहीं कर पाए हैं, जबकि विश्व में अधिसंख्य देश चिकित्सा शिक्षा अपनी मातृभाषा में ही देते हैं।

अंग्रेजी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के प्रभाव

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से आज तक चिकित्सा शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से ही दी जा रही है। इसके निम्न प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहे हैं-

1. 60 करोड़ लोगों को पर्याप्त स्वास्थ्य सुरक्षा सेवा उपलब्ध नहीं हो पा रही है।

2. देश में अंग्रेजी माध्यम की चिकित्सा शिक्षा के संबंध में कई शोध भी हुए हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 1989-2000 के बीच 'एम्स' से स्नातक स्तर की शिक्षा ग्रहण किए चिकित्सकों में से 54 प्रतिशत भारत से बाहर हैं तथा जिनमें 85 प्रतिशत अमेरिका में बताए जाते हैं। अन्य चिकित्सा विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों से भी काफी संख्या में चिकित्सक भारत से शिक्षा ग्रहण कर अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि देशों में जा रहे हैं तथा भारत की ग्रामीण जनता उनकी सेवाओं से वंचित है।

3. अंग्रेजी माध्यम की चिकित्सा शिक्षा ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों में इतना तनाव उत्पन्न करती है कि वे आत्महत्या तक करने को मजबूर होते हैं, जबकि स्कूल स्तर पर वे सर्वोच्च स्थान पर होते हैं।

4. चिकित्सकों की ग्रामीण क्षेत्रों में जाने की अनिच्छा रहती है। इसलिए आज ग्रामीण क्षेत्रों में अक्सर चिकित्सकों की अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

मध्यप्रदेश शासन के प्रयास

इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मध्यप्रदेश शासन द्वारा अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना मध्यप्रदेश अधिनियम क्रमांक 34 के अंतर्गत दिनांक 19 दिसंबर, 2011 को की गई। इस विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य हिंदी भाषा को अध्यापन, प्रशिक्षण एवं ज्ञान की वृद्धि और प्रसार के लिए तथा विज्ञान, साहित्य, कला और अन्य विधाओं में उच्चस्तरीय गवेषणा के लिए शिक्षण का माध्यम बनाना है। विश्वविद्यालय ने अब तक 253 पाठ्यक्रमों का हिंदी में निर्माण कर लिया है। विज्ञान, कला, समाज विज्ञान, वाणिज्य, प्रबंधन एवं विधि में प्रशिक्षण, पत्रोपाधि, स्नातक प्रतिष्ठा, स्नातकोत्तर, विद्यानिधि एवं विद्यावारिधि की पढ़ाई हिंदी माध्यम से प्रारंभ हो चुकी है। वर्ष 2012-13 में 60 विद्यार्थियों से प्रारंभ हुए इस विश्वविद्यालय में वर्ष 2014-15 में 800 के लगभग विद्यार्थी अध्ययनरत हैं।

देश में आम धारणा यह है कि जब तक चिकित्सा और अभियांत्रिकी के क्षेत्र में अध्ययन, अध्यापन और शोध, हिंदी माध्यम से प्रारंभ नहीं हो जाता तब तक हिंदी विश्वविद्यालय का कोई विशेष योगदान नहीं माना जाएगा। अतः चिकित्सा और अभियांत्रिकी में भी चिकित्सा पाठ्यक्रमों को प्राथमिकता देते हुए

विश्वविद्यालय द्वारा कार्य किए गए हैंः-

नियामक संस्थाओं से पत्राचार

चिकित्सा क्षेत्र में प्रमुख नियामक संस्थाएं 'भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्' 'भारतीय नर्सिंग परिषद्' तथा 'भारतीय भेषज परिषद्' प्रमुख हैं। इन परिषदों को विश्वविद्यालय के उद्देश्यों को बताते हुए हिंदी माध्यम से चिकित्सा एवं नर्सिंग के पाठ्यक्रम हिंदी माध्यम से प्रारंभ करने के संबंध में स्वीकृति देने के लिए आग्रह किया गया था, परंतु पत्रों के जबाब में-

'भारतीय नर्सिंग परिषद्' ने 27 अक्तूबर, 2013 को सूचित किया कि 'भारतीय उपचर्या परिषद् का विश्वविद्यालय स्तर का कोई भी पाठ्यक्रम हिंदी माध्यम के अंतर्गत नहीं आता है'।

इसी तरह 'भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्' ने विश्वविद्यालय के पत्र के जवाब में दिनांक 17.04.2013 को लिखा "Medical Council of India is dealing with basic medical qualification ie. MBBS/MD/MS and super speciality courses and has not prescribed these courses in Hindi medium" इस पत्र के उत्तर में विश्वविद्यालय ने पुनः भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्' को पत्र लिखे 'कि यदि इन पाठ्यक्रमों को हिंदी में उपलब्ध करा दें, तो क्या हमें हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के पाठ्यक्रम प्रारंभ करने की स्वीकृति प्रदान कर दोगे? इसके बाद कई स्मरण-पत्र देने तथा व्यक्तिगत रूप से संबंधित अधिकारियों से मिलने के बाद दिनांक 25.03.2015 के पत्र के जवाब में परिषद् की शैक्षणिक समिति के निर्णय से अवगत कराया

"The Acadmic Committee observed that the Medical Council of India has time and again reiterated that in larger interest, the medium of instruction for the medical education under the ambit of Medical Council of India should be English in view of the availability of the abundant reading material in English and the mobility of the students and the teachers within the country and outside. The same is also desired in the context of the internationalization of medial education in global intrests."

एमसीआई की कार्यसमिति तथा माननीय उच्चतम न्यायालय की तदर्थ समिति का मत-

"The members of the adhock Commitee appointed by the Hon'ble Supreme Court and of the Executive Committee of the Council decided- that 'the reading material in Hindi and reference books available in terms of catal ogue of books and juournals is not commensurate even with the basic minimal requirments of the medical education. Further the reading material in Hindi version pertaining to the vast area in the curriculum of undergraduate and postgraduate medical education neither is availble nor is handy. It was further decided that rapid advances are being made in the field of medical education and health care services of which no information is available in Hindi. Considering all these factors, it was decided

that the situation is not yet ripe whereby Hindi could be made available as a medium of instruction for medical education.' It was further decided that Shri Rambhagat Paswan of Hindi Advisory Committee of Ministry of Health & Family Welfare be informed accordingly."

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि 'भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्' जिसको पूरे देश की आवश्यकताओं के अनुसार चिकित्सा शिक्षा को आगे बढ़ाना है, वर्तमान स्थिति में अंग्रेजी माध्यम से विपुल साहित्य की उपलब्धता तथा चिकित्सा शिक्षा के अंतरराष्ट्रीयकरण के तर्क के आधार पर हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा प्रारंभ करने के आग्रह को टालना है। इस परिपेक्ष्य में महात्मा गांधी एवं अटल बिहारी वाजपेयी के हिंदी भाषा के संबंध में विचार जानना आवश्यक है-

'मैं अपने देश में बच्चों के लिए यह जरूरी नहीं समझता कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सर पर ढोएँ और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें। आज इस अस्वाभाविक परिस्थिति का निर्माण करने वालों को मैं जरूर गुनाहगार मानता हूँ। दुनिया में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश का जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना तक नहीं कर सकते, क्योंकि हम खुद उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं। मैं उसकी भयंकरता का अंदाजा लगा सकता हूँ, क्योंकि मैं निरंतर देश के करोड़ों मूक, दलित और पीड़ित लोगों के संपर्क में आता रहता हूँ।'

'हमारे देश में यह कभी नहीं हो सकता कि हजारों लोग अंग्रेजी भाषा को अपना माध्यम बनाएँ और यह अगर मुमकिन हो तो भी चाहने लायक तो कतई नहीं है। इसकी सीधी-सादी वजह यह है कि अंग्रेजी के जरिए मिलने वाला उच्च ज्ञान आम जनता तक नहीं पहुँच सकता। यह तो तभी हो सकता है जब इस ज्ञान का प्रचार ऊपर के दर्जे वालों में भी हिंदी अथवा किसी देशी भाषा के द्वारा हो।

अगर हमारे देश का स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला है, तो निःसंदेह अंग्रेजी ही राजभाषा होगी, लेकिन अगर हमारे देश के करोड़ों भूखे मरने वालों, करोड़ों निरक्षर बहनों और दलित अंत्यजों का है और इन सबके लिए होने वाला है, तो हमारे देश में हिंदी ही एकमात्र राजभाषा हो सकती है।'

-महात्मा गांधी

राष्ट्रपति जी के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर 26 फरवरी, 1970 को लोकसभा में बोलते हुए अटल जी ने कहा था-

'1950 ई. में जब संविधान बना उससे पहले मध्य भारत के उच्च न्यायालय में, हाई कोर्ट में हिंदी में काम होता था। लेकिन एक बात मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या किसी भाषा को काम में लाए बिना, क्या किसी भाषा का उपयोग किए बिना, भाषा का विकास किया जा सकता है? क्या किसी को पानी में उतारे बिना तैरना सिखाया जा सकता है? अगर आज अंग्रेजी समृद्ध है तो इसलिए कि अंग्रेजी में राजकाज, शिक्षा-दीक्षा, अदालती कामकाज, संस्कार, शताब्दियों से चलता आया है और यदि हमारी भाषाएँ कुछ कम विकसित हैं तो इसलिए कि अंग्रेजी की तुलना में इनको विकसित होने का मौका नहीं दिया। एक बार अंग्रेजी हट जाए तो हमारी भाषाएँ विकसित होंगी।

भाषा की प्रतिष्ठा पहले की जाती है, उसका प्रचलन बाद में होता है। यदि इजरायल हिब्रू भाषा को कब्र से खोद कर खड़ा कर सकता है, उसमें राजकाज चला

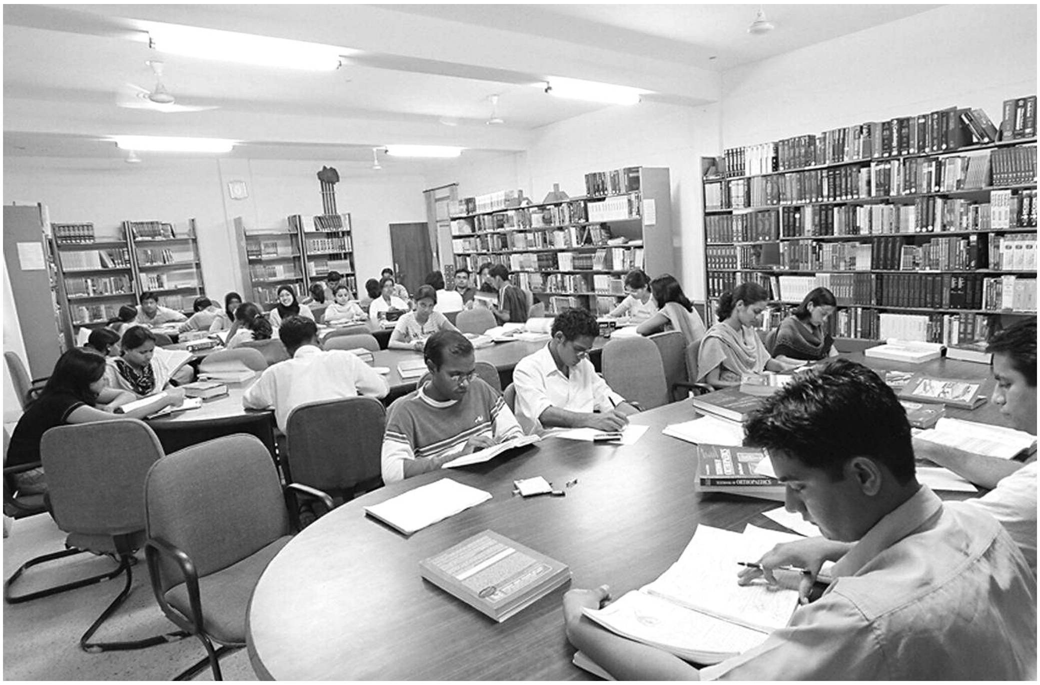

सकता है, उस भाषा में विज्ञान के नए से नए अनुसंधान कर सकता है तो कोई कारण नहीं कि हम अपनी 14 भाषाओं को विकसित करके इस लोकतंत्र को सच्चे अर्थों में जनता का राज न बना सकें।'

स्वास्थ्य मंत्रालय से पत्राचार

भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् से चिकित्सा शिक्षा को हिंदी में प्रारंभ करने की दृष्टि से सकारात्मक उत्तर प्राप्त न होने बाद स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार से भी 21.06.2014, 21.12.2014 एवं 09.02.2015 को पत्र लिखा गया, परंतु अभी तक मंत्रालय से किसी प्रकार का जबाव प्राप्त नहीं हुआ। इससे यह लगता है कि हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा को प्रारंभ करने में मंत्रालय एवं भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् दोनों को कोई रुचि नहीं है। यद्यपि संसदीय राजभाषा समिति, बहुत पहले अपनी रिपोर्ट के खंड-3 और खंड-8 में चिकित्सा, इंजीनियरिंग, प्रबंधन आदि की प्रवेश परीक्षा और पढ़ाई का माध्यम हिंदी को बनाने की सिफारिश कर चुकी है, जिस पर क्रमशः 04.11.1991 और 02.07.2008 को राष्ट्रपति के आदेश भी हो चुके हैं। किंतु उन पर अमल आज तक भी नहीं हुआ है। यह सिफारिश निम्न हैः-

तीसरे खंड की सिफारिश संख्या-छह

कृषि, इंजीनियरिंग तथा आयुर्विज्ञान की भर्ती व प्रवेश परीक्षाओं में हिंदी माध्यम का विकल्प

'समिति ने सिफारिश की है कि कृषि, इंजीनियरिंग तथा आयुर्विज्ञान के सभी प्रशिक्षण संस्थाओं में, जो किसी न किसी रूप में भारत सरकार के नियंत्रणाधीन हैं, भर्ती और प्रवेश परीक्षाओं में तुरंत हिंदी माध्यम का विकल्प प्रदान किया जाए और इस प्रकार की व्यवस्था की जाए कि वहाँ जो भी विद्यार्थी हिंदी

माध्यम से पढ़ना चाहें, उसे हिंदी माध्यम से शिक्षण/प्रशिक्षण दिया जा सके। समिति ने यह भी सिफारिश की है कि आयुर्विज्ञान की शिक्षा भी निकट भविष्य में हिंदी माध्यम से पूरी करने के लिए अभी से प्रयत्न किया जाए और इसके लिए पाठ्य-सामग्री और संदर्भ साहित्य का भी हिंदी में निर्माण कराया जाए। समिति की यह सिफारिश मान ली गई है कि ऐसे संस्थानों, जो किसी न किसी रूप में भारत सरकार के नियंत्रणाधीन हैं, प्रवेश परीक्षाओं में तुरंत हिंदी माध्यम का विकल्प प्रदान किया जाए। शिक्षा विभाग, भारतीय

कृषि अनुसंधान परिषद् तथा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय इस विषय में समुचित कार्रवाई सुनिश्चित करें, ताकि हिंदी भाषा का विकल्प प्रवेश परीक्षाओं में तुरंत दिया जा सके। इंजीनियरिंग तथा कृषि की शिक्षा में हिंदी माध्यम के विकल्प देने के लिए परिस्थितियों को देखते हुए एक समयबद्ध कार्यक्रम बनाएँ। शिक्षा विभाग तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् अपने नियंत्रणाधीन संस्थानों को इस बारे में समुचित निर्देश दें तथा उनका अनुपालन सुनिश्चित कराएँ। समिति की यह सिफारिश भी सिद्धांत रूप में मान ली गई है कि आयुर्विज्ञान की शिक्षा भी निकट भविष्य में हिंदी माध्यम से प्रारंभ करने के लिए अभी से गंभीर प्रयास किए जाएँ तथा पाठ्य-सामग्री और साहित्य का निर्माण कराया जाए। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय इस विषय में समुचित कार्रवाई सुनिश्चित करे और इसके लिए एक समयबद्ध योजना बना कर उसके अनुसार कार्रवाई करे'।

रिपोर्ट के 8वें खंड की सिफारिश संख्या-33

'क' एवं 'ख' क्षेत्र में उच्च शिक्षा अर्थात् विश्वविद्यालयों में इंजीनियरी, कंप्यूटर, शोध, तकनीकी विषयों आदि की शिक्षा हिंदी माध्यम से भी दी जाए और पाठ्य पुस्तकें भी हिंदी में तैयार की जाएँ।

यह सिफारिश स्वीकार की गई है।

संगोष्ठी का आयोजन तथा एम.डी. के शोध ग्रंथ हिंदी में लिखने वालों का सम्मान

विश्वविद्यालय ने नियामक संस्थाओं तथा केंद्र सरकार से पत्राचार करने के बाद यह उचित समझा कि चिकित्सकों के बीच जनजागरण किया जाना चाहिए और इस दृष्टि से 14 सितंबर, 2012 को 'चिकित्सा विज्ञान का शिक्षण, प्रशिक्षण एवं शोध का माध्यम हिंदी' विषयक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में पीपुल्स विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. जी. एस. दीक्षित सहित कई चिकित्सा-शिक्षक उपस्थित हुए। इस संगोष्ठी में ऐसे तीन शिक्षकों का सम्मान किया गया, जिन्होंने देश में प्रथम बार हिंदी माध्यम से अपना स्नातकोत्तर (एम.डी.) का शोध ग्रंथ हिंदी में लिखा था। इनमे डॉ. मुनीश्वर गुप्ता ने 1986-87 में आगरा के सरोजनी नायडू मेडिकल

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के समक्ष प्रमुख चुनौती हिंदी भाषा में साहित्य की अनुपलब्धता ही है। परंतु यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि चिकित्सा क्षेत्र में हिंदी माध्यम से पुस्तक लेखन के लिए प्रयास 1962-63 से किए गए। 1969-70 में हिंदी की पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना की गई। परंतु विश्वविद्यालयों तथा सरकार द्वारा हिंदी माध्यम से परीक्षा देने की स्वीकृति न देने के कारण लेखकों की पुस्तकों की माँग नहीं बढ़ पाई। फिर भी कई शिक्षक हैं जिन्होंने हिंदी माध्यम से चिकित्सा लेखन करने की अपनी आदत नहीं छोड़ी।

कॉलेज में एम.डी. (रेडियोलोजी) में 'सिर एवं गले की कैंसर की सिकाई में अवटु ग्रंथी पर प्रभाव' विषयक शोध ग्रंथ हिंदी में प्रस्तुत किया तथा विश्वविद्यालय ने मान्य किया।

डॉ. सूर्यकांत त्रिपाठी ने 'क्षय रोग की अल्पावधि रसायन चिकित्सा में सह-औषधियों की भूमिका' विषयक शोध ग्रंथ एम.डी. उपाधि हेतु किंग जार्ज मेडिकल कॉलेज, लखनऊ से लखनऊ विश्वविद्यालय को 1991 में हिंदी में प्रस्तुत किया। परंतु इस शोध ग्रंथ को विभागाध्यक्ष तथा प्राचार्य ने मूल्याँकन के लिए जमा करने से मना कर दिया। डॉ. त्रिपाठी ने इसके विरुद्ध संघर्ष किया तथा प्राचार्य द्वारा कुलपति, कुलाधिपति के आदेशों की अवहेलना करने पर उत्तर प्रदेश विधानसभा के दोनों सदनों को शोध ग्रंथ जमा कर मूल्याँकन करने हेतु कठोर प्रस्ताव पास करना पड़ा तथा अंततः शोध उपाधि प्रदान की गई।

उपर्युक्त दोनों शोधार्थियों से प्रेरणा लेते हुए डॉ मनोहर भंडारी ने 1992 में शरीरक्रिया विज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी स्मृति चिकित्सा महाविद्यालय, इंदौर से एम.डी. की उपाधि हेतु 'पुलिस प्रशिक्षण विद्यालय, इंदौर के प्रशिक्षुओं में हीमोग्लोबिन, रुधिरकोशिकामापी, सीरम लौह, कुल लौह बंधन क्षमता एवं फुफ्फुस क्रिया परीक्षण : एक अध्ययन' विषयक शोधग्रंथ मध्यप्रदेश में पहली बार देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर को 1992 में प्रस्तुत किया। इनके अतिरिक्त डॉ. राजकुमार गुप्ता ने विभिन्न नेत्र रोगों में कनीनिका की मोटाई एवं वक्रता का अध्ययन एवं डॉ.अविनाश पालीवाल ने 'लैप्रोमिन परीक्षण के विशेष संदर्भ सहित कुष्ठ रोग का बच्चों में रोग लाक्षणिक अध्ययन' विषयक एम.एस. व एम.डी. उपाधि हेतु शोधग्रंथ प्रस्तुत किए तथा उन्हें उपाधि भी प्रदान की गई ।

हिंदी में चिकित्सा पाठ्यक्रमों का निर्माण

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा प्रारंभ करने की प्रमुख चुनौती हिंदी भाषा में चिकित्सीय पाठ्य सामग्री की अनुलब्धता तथा पाठ्यक्रमों का अंग्रेजी भाषा में होना प्रमुख है। विश्वविद्यालय ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए पाठ्यक्रमों का निर्माण प्रारंभ करवाया।

विश्वविद्यालय ने सर्वप्रथम स्नातक चिकित्सा (एम.बी.बी.एस.) को प्राथमिकता दी और हिंदी माध्यम से निम्न पाठ्यक्रमों को पूर्ण करवा लिया है। एम.बी.बी.एस के प्रथम सेमेस्टर से लेकर अंतिम सेमेस्टर तक लगभग 18 प्रश्न-पत्र छात्रों को पढ़ने पड़ते हैं। अतः विश्वविद्यालय ने शरीर रचना विज्ञान, जीवरसायनशास्त्र, शरीर क्रियाविज्ञान, न्याय संबंधी चिकित्साशास्त्र तथा जीव विष विज्ञान, सूक्ष्म जीव विज्ञान, विकृति विज्ञान, भेषज गुण विज्ञान, निश्चेतना विज्ञान, सामुदायिक चिकित्साशास्त्र, चर्म रोग तथा रतिजरोग विज्ञान, काय चिकित्सा, प्रसूति एवं स्त्रीरोग

विज्ञान, नेत्र विज्ञान, अस्थि विज्ञान, नाक-कान-गला चिकित्सा विज्ञान, शिशुरोग विज्ञान, मनोरोग विज्ञान, एवं शल्यचिकित्सा विषयक पाठ्यक्रम हिंदी में निर्माण करवा लिए हैं। इसके अतिरिक्त सह चिकित्सा पाठ्यक्रमों में चिकित्सा प्रयोगशाला तकनीशियन, डायलिसिस तकनीशियन, एक्सरे रेडियोग्राफर तकनीशियन तथा ओपरेशन थियेटर तकनीशियन जैसे पत्रोपाधि पाठ्यक्रमों की रचना हो गई है। विश्वविद्यालय को हिंदी माध्यम से पैरामेडिकल पाठ्यक्रमों की मान्यता प्रक्रियाधीन है। इन सभी पाठ्यक्रमों को भोपाल में आयोजित दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन (10-12 सितंबर, 2015) में प्रदर्शित किया गया।

चिकित्सा एवं अभियांत्रिकी शिक्षा हिंदी माध्यम से पाठ्यपुस्तक लेखन विषयक संगोष्ठी

7 एवं 8 मार्च, 2015 को दो दिवसीय चिकित्सा, अभियांत्रिकी शिक्षा हेतु हिंदी माध्यम से पुस्तक लेखन के संबंध में कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें प्रदेश के माननीय उच्च शिक्षा मंत्री श्री उमाशंकर गुप्ता, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के अध्यक्ष डॉ. केशरीलाल वर्मा तथा हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र. के अध्यक्ष डॉ. एस.बी. गोस्वामी के अतिरिक्त मध्यप्रदेश आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर के कुलपति प्रो. डी.पी. लोकवानी, मौलाना आजाद राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान के निदेशक डॉ. अप्पू कुट्टन एवं कई शिक्षक व विद्वान उपस्थित थे। दो दिन की इस कार्यशाला में चिकित्सा, अभियांत्रिकी क्षेत्र में पाठ्यपुस्तकों का लेखन, मूल्याँकन तथा अनुवाद प्रक्रिया, पर विचार-विमर्श हुआ तथा कई शिक्षकों ने हिंदी में चिकित्सा से संबंधित पुस्तकें लिखने का आश्वासन दिया तथा कुछ ने कार्य भी प्रारंभ कर दिया है। डॉ. सूर्यकांत त्रिपाठी, लखनऊ ने कायचिकित्सा, डॉ. नीलकमल कपूर, एम्स, भोपाल ने विकृति विज्ञान (पैथोलोजी) तथा डॉ. सतीश दुबे, भोपाल ने मानव शरीर रचना विज्ञान पर पुस्तक लेखन प्रारंभ कर दिया है।

रोगों एवं मनोविकारों के समाधान के लिए मातृभाषा हिंदी का प्रयोग

25 अप्रेल, 2015 को विश्वविद्यालय में डॉ. आलोक पौराणिक के व्याख्यान का आयोजन किया गया जिसमें उन्होंने भाषा और मानव मस्तिष्क का अंतर बताते हुए मातृभाषा में शिक्षा को सर्वाधिक अनुकूल बताया। डॉ. पौराणिक ने वाचाघात (अफेजिया-बोली का लकवा) की चिकित्सा के लिए हिंदी को श्रेष्ठ बताया। इस दिशा में उन्होंने काफी शोध कार्य किया है।

हिंदी माध्यम से प्रकाशित चिकित्सा से संबंधित पुस्तकों का संकलन तथा प्रदर्शन

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के समक्ष प्रमुख चुनौती हिंदी भाषा में साहित्य की अनुपलब्धता ही है। परंतु यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि चिकित्सा क्षेत्र में हिंदी माध्यम से पुस्तक लेखन के लिए प्रयास 1962-63 से किए गए। 1969-70 में हिंदी की पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना की गई। परंतु विश्वविद्यालयों तथा सरकार द्वारा हिंदी माध्यम से परीक्षा देने की स्वीकृति न देने के कारण लेखकों की पुस्तकों की माँग नहीं बढ़ पाई। फिर भी कई शिक्षक हैं जिन्होंने हिंदी माध्यम से चिकित्सा लेखन करने की अपनी आदत नहीं छोड़ी। विश्वविद्यालय ने आज देश के विभिन्न प्रकाशकों से 300 के लगभग पुस्तकों का संकलन किया है, जो सभी हिंदी में प्रकाशित हैं। प्रारंभ में देश में हिंदी ग्रंथ अकादमी की स्थापना के साथ-साथ चिकित्सा के क्षेत्र में भी लेखन प्रारंभ हुआ। अब तक विभिन्न हिंदी ग्रंथ अकादमियों तथा निजी प्रकाशकों

से निम्नलिखित पुस्तकों का संकलन किया गया है। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सर्जरी विषय पर डॉ. कामता शंकर भार्गव (शल्य चिकित्सा के सिद्धांत) और प्रो. टी.सी. गोयल (आधुनिक शल्य चिकित्सा विज्ञान) आदि द्वारा हिंदी में लिखित पुस्तकें भी हमें प्राप्त हुई हैं। **चिकित्सा विज्ञान की हिंदी माध्यम से संकलित पुस्तकों का विवरण**

क्र.सं.	प्रकाशक	संख्या
1.	मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी	04
2.	बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी	16
3.	राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी	14
4.	हरियाणा हिंदी ग्रंथ अकादमी	06
5.	उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान	07
6.	छत्तीसगढ़ हिंदी ग्रंथ अकादमी	01
7.	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली	22
8.	विश्व स्वास्थ्य संगठन	07
9.	वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली	08
10	सुमित प्रकाशन, मेरठ	45
11	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	14
12	चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी	118
13	जे.पी. ब्रदर्स, दिल्ली	26
	कुल	297

भोपाल में आयोजित 10-12 सितंबर 2015 को दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में उपर्युक्त पुस्तकों का प्रदर्शन भी किया गया था।

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के प्रसार में प्रवासी भारतीयों से संपर्क

हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की सूचना मिलते ही अमेरिका निवासी डॉ. कलोल गुहा ने हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा में रुचि दिखाई तथा वे विश्वविद्यालय में आए और छात्रों के समक्ष व्याख्यान भी दिया। उन्होंने हिंदी माध्यम से उत्तीर्ण छात्रों को सरकारी नौकरी में प्राथमिकता, 25 प्रतिशत अधिक वेतन, हिंदी माध्यम से स्थापित करने वाले महाविद्यालयों के संस्थापकों को कर रियायत देने की आवश्यकता बताई, जिससे प्रवासी भारतीय निवेश हेतु आकर्षित हो सकें।

लोक स्वास्थ्य एवं वैकल्पिक चिकित्सा केंद्र की स्थापना

विश्वविद्यालय ने अध्ययन एवं शोध के 10 विशेष केंद्र खोलने का निर्णय लिया है जिसमें एक लोक स्वास्थ्य एवं वैकल्पिक चिकित्सा केंद्र भी है। यह केंद्र लोक स्वास्थ्य जागरूकता पाठ्यक्रमों का निर्माण करेगा जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी को प्रमुख रोगों, औषधियों व रोकथाम की जानकारी दी जाएगी। यह केंद्र लोक स्वास्थ्य परंपराओं के तार्किक आधार हेतु अध्ययन, अनुसंधान तथा समन्वय का कार्य करेगा। यह लोक उपचारकों को मुख्य धारा से जोड़ने हेतु उनको प्रशिक्षण भी देगा।

आज विश्व में 100 से अधिक देशज चिकित्सा पद्धतियाँ हैं। सभी देशों में इनकी लोकप्रियता बढ़ रही है, इसलिए विश्वविद्यालय ने वैकल्पिक चिकित्सा केंद्र की स्थापना की है। विश्वविद्यालय ने योग एवं मानव चेतना विभाग में प्रशिक्षण से लेकर विद्यावारिधि तक पाठ्यक्रम प्रारंभ कर दिए है।

गर्भ संस्कार तपोवन केंद्र की स्थापना

विश्वविद्यालय के कुछ सामाजिक दायित्व भी हैं। इन सामाजिक सरोकारों के अंतर्गत चिकित्सा शिक्षा

के शिशु विभाग से जुड़ा हुआ भारतीय संस्कार के प्रशिक्षण हेतु 'गर्भ संस्कार तपोवन केंद्र' की स्थापना अक्तूबर, 2014 को की गई। यहाँ गर्भवती महिलाओं को गर्भ में पल रहे शिशु को किस प्रकार निशुल्क संस्कारित किया जा सकता है, उस संबंध में प्रशिक्षण दिया जाता है। यह केंद्र देश में काफी चर्चा का विषय बना। इस संबंध में विश्वविद्यालय ने गुजरात के 'बाल विश्वविद्यालय, गांधीनगर' से समझौता किया है, जिसमें केंद्र के संचालन के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। अभी तक इस केंद्र में 9 माह का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तथा 6 माह का प्रशिक्षक पाठ्यक्रम बनाया गया है। केंद्र में 30 से अधिक महिलाओं का पंजीकरण हुआ है। गर्भ संस्कार से पूर्व नव-दंपति प्रशिक्षण शिविर का भी आयोजन होता है।

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा को आगे बढ़ाने के सुझाव

■ स्वास्थ्य सुरक्षा के भावी बाजार को देखते हुए तथा जनसंख्या-चिकित्सक अनुपात में वृद्धि

राष्ट्रीय कौशल विकास निगम के अनुसार 2022 तक देश में 74 लाख स्वास्थ्य कर्मियों की आवश्यकता होगी। अभी तक हम 1.83 लाख मानव संसाधक प्रतिवर्ष निर्माण करते हैं। इस गति से आवश्यकता की पूर्ति हेतु 37 वर्ष लगेंगे। अतः जनसँख्या चिकित्सक अनुपात जो भारत में अभी 1:1700 है विश्व में 1.5:1000 है, को 1:1000 करना चाहिए। यह लक्ष्य चिकित्सा पाठ्यक्रमों को हिंदी/मातृभाषाओं में किये बिना संभव नहीं है।

■ चिकित्सा क्षेत्र की नियामक संस्थाओं द्वारा सभी चिकित्सा परीक्षाओं में हिंदी माध्यम से लिखने की छूट

केंद्र एवं राज्य सरकारों को अपने-अपने क्षेत्र में पीएमटी की तरह परीक्षा में उत्तर द्वि-भाषा में देने की छूट देनी चाहिए। भारत में ब्रिटिश शासनकाल से अंग्रेजी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा देने की परंपरा चल रही है, जिसको अब तक निभाया जा रहा है। अतः शासन द्वारा एम.सी.आई. को द्वि-भाषा में परीक्षा का विकल्प छात्र को देने के निर्देश देने चाहिएँ। जब विद्यार्थियों को हिंदी माध्यम से परीक्षा देने की छूट होगी तो प्रारंभ में पुस्तकों के उपलब्ध न होने के बावजूद भी विद्यार्थी अनुवाद कर परीक्षा में पूछे गए प्रश्न-पत्रों के उत्तर हिंदी भाषा में दे सकेंगे। हिंदी भाषा में परीक्षा देने की छूट होने के बाद पुस्तक की माँग बढ़ जायेगी तथा लेखक भी हिंदी में लेखन के लिए प्रेरित होंगे।

■ चिकित्सा शिक्षण भी द्वि-भाषी माध्यम से

भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् से संपर्क करने पर विश्वविद्यालय ने यह जानने का प्रयत्न किया कि क्या विश्वविद्यालय या चिकित्सा महाविद्यालयों द्वारा चिकित्सा शिक्षा अंग्रेजी भाषा में देने का प्रावधान है। परंतु यह आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजी की अनिवार्यता नहीं होने के बावजूद, व्यवहार में केवल अंग्रेजी में ही अध्यापन एवं परीक्षा देने की व्यवस्था बनाई गई है। अतः शिक्षण का माध्यम भी द्वि-भाषी होना चाहिए।

■ हिंदी ग्रंथ अकादमियों को चिकित्सा शिक्षा की पाठ्य पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित करने के लिए लक्ष्य एवं अनुदान

देश की सभी हिंदी ग्रंथ अकादमियों, हिंदी संस्थानों तथा हिंदी प्रकोष्ठों को जो केंद्र एवं राज्य सरकार से अनुदान प्राप्त करते हैं, के लिए प्रतिवर्ष हिंदी की पुस्तकों का प्रकाशन अनिवार्य किया जाना चाहिए। प्रत्येक अकादमी प्रतिवर्ष कम से कम 5 पुस्तकों का प्रकाशन करे। प्रारंभ में इस कार्य हेतु केंद्रीय बजट में इन संस्थानों को अनुदान की व्यवस्था हो।

■ चिकित्सा शब्दकोशों का निर्माण

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने यद्यपि

अभी तक 5 चिकित्सा शब्दकोशों का हिंदी में निर्माण किया है, परंतु आधुनिक चिकित्सा में प्रगति के कारण यह शब्दकोश अपर्याप्त है अतः आयोग को विभिन्न विषयों तथा रोगों के अनुसार शब्दकोश का निर्माण एक समय-सीमा में करना चाहिए। हिंदी पट्टी में स्थित चिकित्सा विश्वविद्यालय भी चिकित्सा शब्दकोशों का निर्माण करें।

■ विदेशी भाषा में श्रेष्ठ चिकित्सा पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद

आज अभी चिकित्सा विश्वविद्यालय एवं नियामक संस्थाएँ अंग्रेजी भाषा में विपुल चिकित्सा साहित्य उपलब्ध होने के कारण हिंदी में चिकित्सा शिक्षा को आगे बढाने की वकालत नहीं करती अतः यह आवश्यक है कि भारत सरकार का राष्ट्रीय अनुवाद मिशन मैसूर, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय को विभिन्न विदेशी भाषाओं में उपलब्ध चिकित्सा साहित्य का हिंदी में अनुवाद प्राथमिकता से करवाना चाहिए।

■ चिकित्सा विषयों की पांडुलिपियाँ तैयार करने हेतु चिकित्सा विश्वविद्यालयों को दायित्व देने पर विचार

हिंदी भाषी प्रांतों में कई सरकारी एवं निजी चिकित्सा विश्वविद्यालय हैं। इनके साथ 115 के लगभग चिकित्सा महाविद्यालय भी संबद्ध हैं, परंतु अभी तक किसी भी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय ने एक भी चिकित्सा संबंधी पुस्तक हिंदी भाषा में लिखने का प्रयास नहीं किया।

अतः यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों की प्रतिवर्ष 5-5 पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित करवाएँ। इस लेखन कार्य के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संबंधित राज्य सरकार विश्वविद्यालयों को आर्थिक अनुदान प्रदान करें।

■ पदोन्नति को लेखन से जोड़ना

एम.सी.आई. तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चिकित्सा शिक्षा को हिंदी माध्यम से आगे बढ़ाने की दृष्टि से यह प्रावधान करना चाहिए की वह प्रत्येक चिकित्सा शिक्षक की पदोन्नति के लिए तीन वर्ष में कम से कम किसी चिकित्सा उपाधि पाठ्यक्रम के लिए चिकित्सा शिक्षा की एक पुस्तक हिंदी में अवश्य लिखे।

■ स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के स्तर पर लंबित मुकुल चंद्र पांडे समिति की अनुशंसाओं पर विचार

भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने उसकी हिंदी सलाहकार समिति की बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार प्रो. मुकुल चंद्र पांडे की अध्यक्षता में 'चिकित्सा और पराचिकित्सा शिक्षा हिंदी माध्यम समिति' का 22 नवंबर, 1988 को गठन किया गया था, जिसने 1990 में अपना प्रतिवेदन भी भारत सरकार को प्रस्तुत किया था।

परंतु आज तक उक्त समिति द्वारा की गई अनुशंसाओं पर कोई कारगर कार्रवाई नहीं की गई।

■ स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत केंद्रीय हिंदी चिकित्सा प्रकोष्ठ की स्थापना

भारत सरकार द्वारा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के स्तर पर चिकित्सा संबंधी केंद्रीय प्रकोष्ठ का गठन किया जाना चाहिए जो केवल हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के संवर्धन के लिए कार्य करेगा।

■ पारिश्रमिक दरों में संशोधन

हिंदी ग्रंथ अकादमियों तथा हिंदी निदेशालयों को मौलिक लेखन तथा अनुवाद कार्य के लिए पारिश्रमिक दरों में संशोधन करना चाहिए।

चिकित्सा शिक्षकों एवं लेखकों को प्रशिक्षण

यद्यपि हिंदी भाषी प्रदेशों में कक्षाओं में 30-40 प्रतिशत अध्ययन हिंदी में होता है परंतु परीक्षा में लेखन द्विभाषी न होने के कारण हिंदी भाषी छात्रों को कष्ट होता है। अतः यह आवश्यक है कि चिकित्सा शिक्षकों को हिंदी माध्यम से शिक्षण तथा लेखन का प्रशिक्षण भी दिया जाए।

■ पुरस्कार एवं सम्मान

चिकित्सा क्षेत्र में लेखन एवं शोध हिंदी माध्यम से करने वालों को नकद पुरस्कार एवं छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाएँ। विश्वविद्यालय /महाविद्यालय में संगोष्ठियों का आयोजन किया जाए।

■ स्नातक चिकित्सा के वैकल्पिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता पर विचार

एम.बी.बी.एस. का वर्तमान पाठ्यक्रम जो साढे पाँच वर्ष का है, उसे छात्र भाषा व अन्य रुकावटों के कारण 8-15 वर्षों तक उत्तीर्ण करते देखे गए हैं। ऐसे विद्यार्थी व उनके अभिभावक बहुत तनावों में जीवन व्यतीत करते हैं, जिससे अवसादग्रस्त मनःस्थिति के कारण आत्महत्याओं के समाचार भी समाचार पत्रों में आते हैं। भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् ने 1934 में अपनी स्थापना के बाद 1956 में कुछ मौलिक बदलाव किए थे। उसके बाद आज तक देश की स्वास्थ्य समस्याओं व देश की आवश्यकताओं के अनुसार कोई सार्थक परिवर्तन और प्रयास नहीं किए गए। इसी कारण कुपोषण एवं क्षय रोग देश में अब भी चुनौती है। कम से कम 5 वर्षों में पाठ्यक्रमों में देश की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। विश्वविद्यालय को इस पर विचार करने के लिए एक अध्ययन समूह का गठन करना चाहिए।

■ चिकित्सा लेखकीय संवर्ग (कैडर) का समानांतर निर्माण

चिकित्सा शिक्षा में लेखन हेतु शिक्षकों की भांति लेखकों के पदों का सृजन करना चाहिए। लेखकों व शिक्षकों की सेवा शर्तें समान होनी चाहिएँ। इस नीति के दूरगामी परिणाम होंगे। शिक्षकों की भांति कॉडर बनने से स्रोत लेखन व अनुवाद दोनों में वृद्धि होगी।

■ अतिविशिष्ट क्षेत्रों के विशेषज्ञों के बाहर जाने पर क्षतिपूर्ति हेतु यहाँ के छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करने के आदेश

एम.सी.आई. की अकादमी परिषद् ने चिकित्सा शिक्षा की गुणवत्ता तथा वैश्वीकरण के लिए हिंदी माध्यम का विरोध किया है, जबकि आज वैश्वीकरण के नाम पर भारतीय संसाधनों के आधार पर प्रशिक्षित चिकित्सक प्रायः विदेशों में चले जाते हैं। जिनके ज्ञान का लाभ भारतीय जनता को नहीं हो पता। प्रायः यह देखा गया है

'मैं अपने देश में बच्चों के लिए यह जरूरी नहीं समझता कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सर पर ढोएं और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें। आज इस अस्वाभाविक परिस्थिति का निर्माण करने वालों को मैं जरूर गुनाहगार मानता हूँ। दुनिया में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश का जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना तक नहीं कर सकते, क्योंकि हम खुद उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं। मैं उसकी भयंकरता का अंदाजा लगा सकता हूँ, क्योंकि मैं निरंतर देश के करोड़ों मूक, दलित और पीड़ित लोगों के संपर्क में आता रहता हूँ।

-महात्मा गांधी

कि हिंदी या अन्य भारतीय भाषा से प्रशिक्षित चिकित्सक की प्रवृत्ति भारत में रहकर सेवा देनी की होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार 1989-2000 के बीच अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान से उत्तीर्ण 54 प्रतिशत छात्र विदेशों में चले गए जिनमें 85.4 प्रतिशत अमेरिका में हैं। अतः ऐसे चिकित्सकों से भारत में अध्ययनरत छात्रों के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त की जानी चाहिए जिससे उन पर किए गए व्यय की कुछ सीमा तक क्षतिपूर्ति की जा सके।

■ एम.सी.आई. व अन्य नियामक संस्थाओं द्वारा सेवानिवृत्त चिकित्सकों व अन्य विषय विशेषज्ञों के लिए लेखन योजना प्रारंभ करना

सभी नियामक संस्थाओं द्वारा सेवानिवृत्त चिकित्सकों व विषय विशेषज्ञों के लिए लेखन योजना बनाकर उन्हें चिकित्सा शिक्षा के हित में लेखन के कार्य में लगाना चाहिए। कौंसिल इस कार्य हेतु एक समिति का गठन कर सकती है। अनुभवी शिक्षकों से पुस्तकें लिखवाने से गुणवत्ता में वृद्धि हो सकेगी। हमें ध्यान रखना चाहिए कि बोला हुआ शब्द समय के साथ भूला हुआ शब्द बन जाता है, परंतु लिखा हुआ शब्द लकीर पर होता है जो लंबे समय तक जीता है तथा एक परंपरा बनाता है।

■ राष्ट्रीय उच्च चिकित्सा व तकनीकी शिक्षा लेखन मिशन की स्थापना

यह संस्था देश की हिंदी ग्रंथ अकादमियों द्वारा माध्यम से प्रकाशित चिकित्सा व तकनीकी विषयों की पुस्तकों की गुणवत्ता की जांच करे, उनके लिए संसाधनों की आपूर्ति करे तथा देश-विदेश में उनके प्रकाशनों की माँग व पूर्ति का समायोजन करें।

■ अनुवाद प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी चिकित्सा शिक्षण को बढ़ावा

आजकल शिक्षा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का निरंतर समावेश हो रहा है। चिकित्सा शिक्षण अंग्रेजी माध्यम से ही होता है, परंतु अब ऐसे सॉफ्टवेयर विकसित हो गए हैं जो अंग्रेजी के भाषण को हिंदी में परिवर्तित कर देते हैं। ऐसा ही एक साफ्टवेयर सी-डैक, पुणे ने बनाया है जिसका नाम 'वाचांतर' है। ऐसे साफ्टवेयर अधिक संख्या में विकसित किए जाने चाहिएँ।

इस प्रकार भारत सरकार, राज्य सरकारों तथा नियामक संस्थाओं द्वारा उपर्युक्त सुझावों पर ध्यान दिया जाता है तो हिंदी माध्यम से चिकित्सा प्रारंभ होने पर अंग्रेजी चिकित्सा शिक्षा से प्रतियोगिता कर सकेगी तथा हिंदी में शोध प्रारंभ होने पर अंग्रेजी चिकित्सा शिक्षा से प्रतियोगिता कर सकेगी। मातृभाषा से चिकित्सा शिक्षा प्रारंभ होने पर देश की स्वास्थ्य संबंधी अनेक समस्याओं का स्वतः ही निपटारा हो सकेगा।

लेखक अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल के कुलपति हैं।

मनोगत

मान्यवर महोदय

आपके स्नेह और सहयोग के बल पर 'मंगल विमर्श' का अप्रैल अंक प्रस्तुत है। पत्रिका के सुधी पाठकों से प्राप्त प्रतिक्रियाएँ हमारे लिए एक बहुत बड़ा संबल और मार्गदर्शक होती हैं। सोनीपत से प्रकाशित स्वास्थ्य पत्रिका के संपादक **डॉ. शिव कुमार खंडेलवाल** ने अपने पत्र में लिखा है कि मंगल विमर्श के अक्तूबर अंक में साइबर पोर्नोग्राफी के दुष्परिणामों पर लिखा आचार्य विजयरत्न

सुंदर सुरिश्वर जी महाराज का आलेख, देश में वर्तमान युवा समाज में व्याप्त अराजकता, निरंकुशता और निरंतर बढ़ती मानसिक विकृति के प्रति विशेष महत्त्वपूर्ण है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी (अपनी कुंठित मानसिकता के कारण) समाज की मर्यादाओं को ध्वस्त करने को उद्यत हैं, हर भारतीय को उसका डटकर विरोध करना चाहिए। यह मानवमात्र के कल्याण के लिए विचारणीय है।

'मंगल विमर्श' द्वारा सामाजिक सरोकारों से जुड़े मुद्दों पर आयोजित की जाने वाली संगोष्ठियों के क्रम में 20 दिसंबर, 2016 को 'परिवार' विषयक संगोष्ठी हुई। जिसमें विद्वान वक्ताओं ने परिवार की महत्ता के विविध पहलुओं और समाज में वर्तमान संदर्भ में इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला। संगोष्ठी में मंगल सृष्टि के अध्यक्ष माननीय डॉ. बजरंगलाल गुप्ता जी ने कहा कि भारतीय संस्कृति का आधार ही परिवार है। इसके सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक आयाम हैं। रिश्ते-नातों की व्यवस्थित और मजबूत शृंखला केवल भारत में ही है, जो व्यक्ति, परिवार और समाज को आपस में जोड़ कर रखती है। परिवार में श्रद्धा और स्नेह का संबंध सबको जोड़ता है। उन्होंने कहा कि आज परिवार संस्था को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। समाज में समय-समय पर चुनौतियाँ उभरती रहती हैं, जिन का समाधान समसामयिक मनीषी करते हैं। इसी प्रकार आज जो चुनौतियाँ हैं उन का समाधान करने का दायित्व आज के मनीषियों पर है।

'राष्ट्र किंकर' के संपादक श्री विनोद बब्बर ने विदेशों के अपने प्रवास के अनुभवों के आधार पर बताया कि परिवार भारतीय संस्कृति की नीवँ है और आज पूरा विश्व इस दृष्टि से आशा भरी निगाहों से हमारी ओर देख रहा है, क्योंकि दुनिया समझ चुकी है कि विश्व मंगल के सूत्र परिवार में निहित है। उन्होंने कहा कि 'मैं' से ऊपर उठने का नाम परिवार है। आत्मकेंद्रित व्यक्ति और परिवार परस्पर विरोधी परिस्थितियाँ हैं। परिवार के कई रूप हो

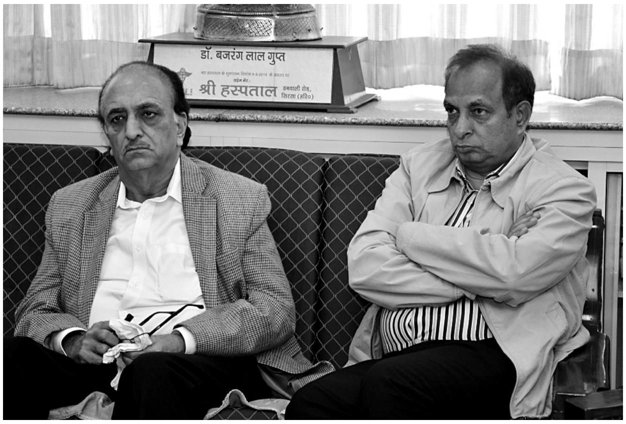

सकते हैं लेकिन उसका विस्तार अनंत तक है। समाज परिवार का प्रथम विस्तार है। राष्ट्र परिवार की अगली सीढ़ी है, लेकिन अंत नहीं है, क्योंकि भारतीय दर्शन 'वसुधैव कुटंबकम्' के आधार पर संपूर्ण विश्व को परिवार घोषित करता है। हम तो उन पितरों को भी तर्पण करते हैं जिन्हें हमने कभी देखा नहीं। इस तरह हमारे परिवार का विस्तार संपूर्ण ब्रह्मांड है। जब हम 'मैं' से आगे बढ़ते हैं तो सबसे पहले स्वार्थ की बलि दी जाती है। त्याग, समर्पण, स्नेह का नाम है परिवार। परिवार समाज की प्रथम पाठशाला है। सहयोग-सेवा-समर्पण परिवार को स्वर्ग बनाते हैं।

चार्टर्ड एकाउंटैंट श्री सुनील माहेश्वरी ने कहा कि परिवार प्रकृति का हिस्सा है। परिवार साधन भी बन सकता है बंधन भी। परिवार मुझे बंधन की तरफ भी ले जा सकता है मुक्ति की ओर भी। ब्रह्मचर्य आश्रम में स्वयं का और मेरा 'मैं' है। गृहस्थ आश्रम में दायित्त्व बोध है। वानप्रस्थ आश्रम में सामाजिक दायित्वबोध है, एवं संन्यास आश्रम में आध्यात्मिक एवं विश्वकल्याण दायित्वबोध है।

दिल्ली विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र की पूर्व प्राध्यापिका डॉ शशि सक्सेना ने बच्चों के विकास में माता-पिता की भूमिका का उल्लेख करते हुए कहा कि बच्चों को हम पर्सनल प्रोपर्टी मान लेते हैं, जबकि उनके भी कुछ सामाजिक दायित्व होते हैं। हमें उन्हें भी कुछ खुलापन और भावनात्मक स्वतंत्रता देनी चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता श्री गौरी नंदन सिंघल ने बच्चों को संस्कारित करने के बारे में कुछ सूत्र बताते हुए कहा कि विभिन्न अवसरों पर सामूहिक कार्यक्रम मनाने चाहिएं जिससे परिवार के कनिष्ठ सदस्यों में संस्कारों का बीजारोपण हो सके।

युवा पत्रकार श्री प्रमोद सैनी ने बताया कि आज मीडिया तथा डिजिटल तकनीक परिवार को सर्वाधिक प्रभावित कर रहा है। आज घर में बच्चों को दादा-दादी द्वारा कहानी सुनाने की परंपरा तो लगभग समाप्त हो गयी है। पुस्तकों आदि से जो नैतिक शिक्षा मिलती थी उसमें भी कमी आई है। कुछ दशक पहले तक समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में ही काफी संस्कारप्रद सामग्री प्रकाशित होती थी लेकिन अब वह भी धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। इसके अलावा महिलाओं के लिए प्रकाशित होने वाली कुछ पत्रिकाओं में जो सामग्री आज प्रकाशित होती है वह कुसंस्कार अधिक पैदा करती हैं। ऐसी स्थिति में सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि परिवार में संस्कार कैसे मिलें। जहाँ तक नई तकनीक का प्रश्न है तो हमें इससे डरने की जरूरत नहीं है। जरूरत है इस चुनौती को अवसर में तब्दील करने की। हम इसी तकनीक का इस्तेमाल पूरे परिवार को संस्कार प्रदान करने के एक बड़े उपकरण के रुप में कर सकते हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्राध्यापक डॉ. हरीश सक्सेना ने अपने विदेश के अनुभवों को साझा करते हुए कहा कि हमें पूरे विश्व को परिवार के रूप में ही देखना चाहिए। दिल्ली विश्वविद्यालय में बिजनेस स्टडी विभाग के पूर्व प्राध्यापक प्रो. राजवीर

शर्मा ने कहा कि 'स्व' हावी हो और अपने स्वार्थ हावी हो जाएँ तो परिवार टूटन की ओर बढ़ता है। भेद का व्यवहार परिवार के लिए अहितकारी है। प्रख्यात साहित्यकार श्री आनंद आदीश ने कहा कि 13.5 अरब वर्ष पूर्व हुए महाविस्फोट के परिणाम स्वरूप शून्य से साकार हुई सृष्टि के प्रत्येक घटक के विकास का इतिहास बहुत रोचक और विस्मयकारी है। 'परिवार' संस्था के बीज मनुष्य के विकासक्रम में छिपे हैं। स्वार्थों के हावी होने से आज परिवार के समक्ष संकट उत्पन्न हो गया है और परिवार को जोड़ कर रखना सबसे बड़ी समस्या है। परिवार के सवंर्धन व संरक्षण के लिए हम कठोपनिषद् का आश्रय लें -

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।।

जैन दर्शन के मर्मज्ञ श्री मुन्नालाल जैन ने कहा कि भारतीय संस्कृति में परिवार समाज की सबसे पहली और छोटी मूल इकाई है। परिवार की कल्पना सामाजिक समझौते के रूप में नहीं बल्कि यह एक जीवन पद्धति है। पुरुष और महिला से ही परिवार की संकल्पना उत्पन्न होती है। इसमें पुरुष के साथ महिला का भी विशेष महत्त्व है, क्योंकि महिला बच्चों को संस्कारित करने के लिए पहली अध्यापिका, संरक्षिका, निर्देशिका, वात्सल्यमूर्ति का कार्य करती है। स्त्री में मेधा, स्मृति, क्षमा, धृति, श्री, वाक् और कीर्ति आदि गुण पाए जाते हैं। विश्व के समस्त परिवार को तीन आधारों पर विभाजित किया जा सकता है।

■ भोगवादी संस्कृति जिसका जन्म सिमेटिक दर्शन से हुआ है, जिसमें मुस्लिम, ईसाई और यहूदी आते हैं।

■ दूसरा चार्वाक दर्शन पर आधारित साम्यवादी दृष्टिकोण।

■ तीसरा भारतीय चिंतन पद्धति, जिसमें सनातन हिंदू, जैन, बौद्ध और सिख आते हैं।

हमें चिंतन करना है, कि भारतीय पद्धति के परिवारों का मूल आधार है 1. 'आत्मवत् सर्व भूतेषु', 2. 'ते तक्त्वा भुंजिता', 3. 'जियो और जीने दो', 4. 'सहः न भुनक्तु', 5. 'पुनर्जीवन, कर्मफल की अवधारणा' और 6. 'प्राण जाई पर वचन न जाई'। इन आधारों पर भारतीय परिवार अपनी भावी पीढ़ी को संस्कारित करते हैं, यद्यपि मल्टीनेशन कम्पनियाँ अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए भारतीय परिवारों का विखंडन करने के लिए अपनी कुटिल नीतियों से भारतीय परिवार पद्धति का विनाश करने में प्रयासरत है। हमें इससे सावधान रहने की आवश्यकता है

'मंगल विमर्श' के प्रधान संपादक प्रो. ओमीश परुथी ने संगोष्ठी का समापन करते हुए कहा कि सभी विद्वानों ने भारतीय संस्कृति में परिवार का महत्त्व बताते हुए स्पष्ट किया कि तीन 'प' प्रेम, परंपरा व पारदर्शिता परिवार के लिए बहुत जरूरी हैं।

स्नेहाकांक्षी

आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

सहयोगी वृंद

1. श्री केला देवी धोलपुर हाउस
सी- 150, पुष्पांजलि एन्क्लेव,
पीतमपुरा, दिल्ली 110034

2.श्री वर्धमान डेकोरेटर
एस- 25/67, सेक्टर 7,
रोहिणी, दिल्ली 110085

3.सोमनाथ ओमप्रकाश एंड कंपनी
डी -409, न्यू सब्जी मंडी ,
आजादपुर, दिल्ली - 110033

4.श्री अनुज जयकरण
ई -14, प्रशांत विहार, दिल्ली - 110085

5.प्रो. सुनील पांडेय
मैकेनिकल इंजीनियरिंग विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान
दिल्ली, हौज खास, नई दिल्ली -110016

6.श्री मुन्नालाल जैन
ए -3/ 120, सेक्टर -5, रोहिणी, दिल्ली - 110085

7.श्री महावीर गोयल
हाउस नंबर 2, प्रथम तल, सड़क नंबर 11, पंजाबी
बाग एक्सटेंशन, नई दिल्ली- 110026

8.डॉ पीयूष चैटर
पीएमसी अमेरिकन अस्पताल, इंद्र विहार,
कोटा, राजस्थान - 324005

9.डॉ. जयकरण गोयल
ई -14, प्रशांत विहार, दिल्ली- 110085

10.श्री राजेंद्र मित्तल
6/52 , वेस्ट पंजाबी बाग ,
नई दिल्ली- 110026

11.डॉ. ऋचा मित्तल
ई -14, प्रशांत विहार, दिल्ली- 110085

12.श्री भारत भूषण आर्य
ई -25, दूसरी मंजिल, प्रशांत विहार, दिल्ली-
110085

13.स्वामी प्रेम स्वरूप जी
शंकर आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार,
उत्तराखंड- 249407

मंगल विमर्श
सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श — त्रैमासिक पत्रिका

मुख्य संरक्षक	प्रधान संपादक	संयुक्त संपादक	प्रबंध संपादक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता	ओमीश परुथी	डॉ. रवींद्र अग्रवाल	आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

मंगल विमर्श की.......................... वर्षों की सदस्यता हेतु.......................................

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. .... दिनांक..

बैंक.. भेज रहे हैं,

कृपया.. वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम...

पता...

....

.... पिनकोड ....

फोन :... मोबाइलः..

इ-मेल..

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in